## अध्याय 5

# कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी की स्त्री दृष्टि

5.1- स्त्री दृष्टि: अवधारणा एवं अर्थ विस्तार

5.2- साहित्य में स्त्री दृष्टि

5.3- स्त्री साहित्य में स्त्री होने का आशय: कृष्णा सोबती

5.4- स्त्री साहित्य में स्त्री होने का आशय: इंदिरा गोस्वामी

# कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी की स्त्री दृष्टि

## 5.1- स्त्री दृष्टि: अवधारणा तथा अर्थ विस्तार

स्त्रीदृष्टि से आशय किसी भी घटना और उसके कारणों को नारीवादी नजरिए से देखे जाना है। स्त्रीदृष्टि के माध्यम से जेंडरगत आधार पर बनती सामाजिक व्यवस्था का पर्त दर पर्त विश्लेषण संभव हो पाया है। वैश्विक स्तर पर स्त्री दृष्टि की अवधारणा के उदय को सातवें दशक से समझा जा सकता है। यह वह समय था जब अमेरिका में वियतनाम युद्ध के विरोध में तथा सिविल अधिकारों की माँगों से संबंधित आंदोलनों में महिलाएं सक्रिय रूप से जुड़ीं। आंदोलन से जुड़ी स्त्रियों ने यह अनुभव किया कि उनके साथी पुरुष भले ही सार्वजनिक मंचों पर शांति, न्याय और समता की बात करते हों परंतु वास्तविकता में साथी महिलाओं से उनका व्यवहार आम पुरुषों से भिन्न नहीं था। विजय झा अपने आलेख 'पितृसत्ता: विमर्श के भीतर' में लिखते हैं कि " वे (आंदोलन से जुड़ी महिलाएं) न केवल परे धकेल दी गईं बल्कि वियतनाम-युद्ध विरोधी मुहिम का झण्डा थामे संगठन के नेतृत्व ने उनसे कहा कि स्त्रियों को पुरुषों के पीछे रहना चाहिए। दूसरे शब्दों में, वे भी उनको भोग की वस्तु और अनुगामिनी मान रहे थे। जबकि उन महिलाओं ने यह सोचा था कि शोषण और अन्याय के खिलाफ मुहिम चलाने वाले पुरुषों की मानसिकता बदली हुई होगी और कम से कम आंदोलन में वे उन्हें अपने बराबर समझेंगे। "[1] वियतनाम युद्ध के भाँति भारत में भी स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भूमि और पर्यावरण जैसे मुद्दों पर सत्तर के दशक में हुए आंदोलनों में भाग लेने वाली महिलाओं के साथ इसी तरह का व्यवहार किया गया। बोधगया भूमि संघर्ष पर लिखे आलेख 'जमीन किनकर? जोते उनकर!' में मणिमाला ने यह तथ्य उद्घाटित किया है, "आंदोलन में भाग लेने के दौरान स्त्रियों को यह बात समझ में आई कि पुरुष उन्हें न तो नेतृत्वकारी भूमिका में देखना चाहते थे और न ही उनके जीवन से जुड़े मसलों को प्राथमिकता देने के लिए तैयार थे। समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों पर सवाल उठाने वाली स्त्रियों को घर में अपने पुरुषों की हिंसा झेलनी पड़ती थी।

ये वे पुरुष थे जो स्त्रियों को जमीन के आंदोलन में अग्रणी भूमिका में रखने के हिमायती थे। कारण उन्हें यह भलीभाँति मालूम था कि स्त्रियों की शिरकत के बिना वे अपने मकसद में कामयाब नहीं हो सकते थे। बोधगया भूमि संघर्ष में घरेलू कामकाज में पुरुषों के हाथ बँटाने, शराबबंदी और पत्नी की पिटाई के मुद्दे कई बैठकों में उठाए गए, लेकिन उन्हें जमीन के मसले की तुलना में कम तवज्जो दी गई। जो स्त्रियाँ दोनों हो मोर्चों पर संघर्षरत थीं, वे सोच में पड़ गईं जब पुरुष भूमिहीन हैं तब उनका स्त्रियों के साथ इतना बुरा व्यवहार है, क्या होगा जब उन्हें जमीन मिल जाएगी?[2] इन तथ्यों के आधार पर यह समझा जा सकता है कि शोषक और शोषित समाज के मध्य मूलभूत अंतर दृष्टिकोण का है और उपरोक्त आंदोलनों में स्त्री-मुद्दों की पूरी तरह से अनदेखी की गई। निवेदिता मेनन 'नारीवादी निगाह से' में लिखती हैं कि स्त्री दृष्टि का प्रश्न मात्र स्त्री समुदाय से जुड़ा हुआ नहीं है बल्कि पुरुष वर्ग भी स्त्री दृष्टि के माध्यम से एक बेहतर और समता मूलक समाज की नींव मजबूत करने में सहायक हो सकता है। "नारीवाद केवल महिलाओं के राजनीतिक रवैये या उनकी जीवन शैली तक सीमित नहीं है, बल्कि अगर पुरुष इस नजरिए के हामी बनना चाहते हैं तो उन्हें अपने उन विशेषाधिकारों का त्याग करना होगा जिनके बारे में वे कभी अलग से सोचने की जहमत नहीं उठाते। "[3] सातवें दशक के पूर्वार्द्ध में स्त्री अधिकारों का मांग पत्र यू एन ओ (United Nations Organization) में प्रस्तुत होकर स्वीकृत हुआ और अनेक देशों ने उस पर हस्ताक्षर किए जिसमें भारत भी शामिल था। भारत में परिवार केंद्रित संस्कृति है अतः भारत और पश्चिम की स्त्री की दशा में अंतर है। भारत में स्त्रियों की स्थिति के आकलन के लिए सरकार द्वारा 'कमेटी ऑन द स्टैटस ऑफ वुमन' का गठन किया गया था। जिसके पश्चात कमेटी द्वारा 1975 में 'समता की ओर' रिपोर्ट प्रकाशित की गई। उमा चक्रवर्ती और साधना आर्य लिखती हैं, "चार दशक पहले 'समता की ओर' रिपोर्ट के प्रकाशन और उदीयमान स्त्री-आंदोलनों के परिणामस्वरूप स्त्रियों की स्थिति पर शोध शुरू होने के साथ-साथ निजी और सार्वजनिक दोनों दायरों में स्त्रियों और उनके अनुभवों की अदृश्यता का भी पता चला। "[4] इस रिपोर्ट के प्रकाशन के साथ ही यह स्पष्ट हुआ कि

भले ही संविधान द्वारा स्त्री और पुरुषों को समान नागरिक अधिकार दिए गए हैं परंतु "रिपोर्ट इस बड़े नतीजे पर पँहुची कि विकास की प्रक्रिया में एक तो पहले से ही अपनी कमजोर स्थिति के कारण और दूसरे, तमाम नीतियों, कार्यक्रमों और कानूनों के स्त्री-परिप्रेक्ष्य में न होने के कारण स्त्रियाँ लगातार पीछे छूटती चली गईं। "[5] संविधान में उल्लिखित समान नागरिक संहिता के दोहरे मापदंडों पर प्रश्न उठाते हुए निवेदिता मेनन इसे एक अलग दृष्टिकोण से देखने का आग्रह करती हैं, "तथ्य यह है कि विवाह, उत्तराधिकार तथा बच्चों के संरक्षण से संबंधित तमाम सामुदायिक कानून महिलाओं के साथ के साथ किसी न किसी रूप में पक्षपात पूर्ण व्यवहार करते हैं; क्या इससे यह साबित नहीं होता कि समान नागरिक संहिता के मुद्दे को एक दूसरे कोण से देखा जाना चाहिए?[6] स्पष्ट रूप से निवेदिता मेनन भारतीय न्याय व्यवस्था को स्त्री दृष्टि से देखे जाने की आवश्यकता पर बल दे रही हैं। 1975 में स्त्री दृष्टि के उत्थान का दूसरा दौर शुरू हुआ जो साहित्य के साथ-साथ इतिहास, भूगोल, कानून और राजनीति में स्त्रियों के लिए उपयुक्त अधिकारों की मांग सामने लाता है।

स्त्री दृष्टि के माध्यम से ही यह समझा जा सकता है कि सामाजिक व्यवस्था में जेंडर आधारित भेदों के साथ ही संरचनात्मक भेद यथा जातीय तथा वर्गीय भेद भी उपस्थित हैं। अतः बनी-बनाई व्यवस्था का ऊपरी तौर पर अध्ययन कर लेने मात्र से सामाजिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना नहीं की जा सकती। जरूरत है इस पूरी व्यवस्था को अस्थिर करके देखने की। "नारीवादी दृष्टिकोण चीजों को संतुलन प्रदान करने के बजाय उन्हें अस्थिर करके देखता है। हम इस तथ्य को जितना समझते जाते हैं, हमारे क्षितिज उतने ही बदलते जाते हैं। "[7]

नारीवादी दृष्टिकोण के विषय में निवेदिता मेनन लिखती हैं, "जब हम दुनिया को नारीवाद की आँख से देखते हैं तो हमें वह माइक्रोसॉफ्ट वर्ड के 'रिवील फॉर्मेटिंग' फंक्शन जैसी दिखाई पड़ती है। पता चलता है कि हम जिसे समतल और सम्पूर्ण सतह मानकर चल रहे थे उसके नीचे कितनी गुत्थियाँ और जटिलताएँ मौजूद हैं। "[8] आठवें दशक में स्त्री दृष्टि की अनुपस्थिति को ध्यान में रखते

हुए भारत में ज्ञान की पारंपरिक शाखाओं का विश्लेषण किया गया जिससे ज्ञान की एक शाखा के रूप में स्त्री-अध्ययन का मार्ग  प्रशस्त हुआ। राधा कुमार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात के नारीवादी आंदोलनों के विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट किया कि इन आंदोलनों की लिखित प्रचार सामग्री स्त्रियों के परिप्रेक्ष्य पर आधारित ज्ञानानुशासन 'स्त्री-अध्ययन'के प्रारम्भिक पाठ्यक्रम-निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण साबित हुई।  "इस संदर्भ में प्रसिद्ध इतिहासकार गर्डा लर्नर ने कहा है कि अब तक का ज्ञान एक आँख से देखे गए का परिणाम था।  दोनों आँखों से देखने पर हमारे दृश्य का फलक विस्तृत होता है और यही स्त्री अध्ययन को औचित्य प्रदान करता है। "[9]

विभिन्न ज्ञानानुशनों का स्त्री दृष्टि से अध्ययन करने पर महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आते हैं यथा- विनीता बल ने अपने लेख 'विज्ञान में जेन्डरगत भेदभाव' के माध्यम से इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि "प्रयोगशाला में जगह मिलने से लेकर वेतन, शैक्षिणिक जिम्मेदारियाँ प्रदान किए जाने, पुरस्कार तथा महत्वपूर्ण समितियों में शामिल किए जाने तक, महिलाओं के साथ सभी स्तरों पर भेदभाव बरता जाता है। "[10]

ऋतु दीवान इस तथ्य को उद्घाटित करती हैं, "मुख्यधारा के अर्थशास्त्र में परिवार विश्लेषण की इकाई नहीं है, जो श्रम के आवंटन और सत्ता तथा संसाधन के वितरण का प्रमुख स्थल है। अर्थशास्त्र की यह धारा उन कार्यों को काम की श्रेणी में नहीं रखती, जो बजारोन्मुखी नहीं हैं।  नतीजतन, घर में स्त्रियों द्वारा किए जाने वाले काम इसके विश्लेषण की जद में नहीं आ पाते।  इसलिए मुख्यधारा के अर्थशास्त्र के लिए जेंडेर आधारित असमानता का वजूद है ही नहीं। "[11]

"दीप्त भोग ने सन 2000 में सरकार द्वारा बनाए गए नेशनल करिकुलम फ्रेम वर्क (NCF) तथा एनसीईआरटी (NCERT) द्वारा समाज विज्ञान की किताबों का विश्लेषण करते हुए इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में प्रगतिशील होने के भले ही लाख

दावे मिलते हों, लेकिन जहाँ तक जेन्डर का सवाल है तो पाठ्यपुस्तकें विद्यार्थियों को समुचित शिक्षा दे पाने में विफल साबित हुई हैं। "[12]

यू विंध्या ने मनोविज्ञान में प्रचलित संकल्पनाओं का नारीवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण किया है। "उन्होंने यह दिखलाया है कि नारीवादी दृष्टिकोण अपनाने पर व्यवहार की सार्वभौमिकता, मानसिक प्रक्रियाओं की प्राथमिकता, सामाजिक अंतर्विरोध का वैयक्तिक (सब्जेक्टिव) व्यवहारों में विघटनीकरण, वस्तुनिष्ठता और मूल्य निरपेक्षता जैसी अवधारणाओं में निहित पूर्वाग्रह किस तरह स्पष्ट होने लगते हैं। "[13]

स्त्री दृष्टि से देखने पर स्त्री के अस्तित्व, उसकी सामाजिक सत्ता के साथ उसकी आत्मछवि में भी एक बदलाव आता है। विवियन फॉरिस्टर ने अपने लेख 'What Women's Vision Is' में इस तथ्य का जिक्र किया है कि हम नहीं जानते कि स्त्रियाँ दुनिया को किस तरह देखती हैं, या तो हम स्वयं की दृष्टि को समझते हैं या फिर पुरुष दृष्टि, "We don't know what women's vision is. What do women's eyes see? How do they carve, invent, decipher the world? I don't know. I know my own vision, the vision of one women, but the world seen through the eyes of others? I only know what men's eyes see."[14]

विवियन ने यह लेख मुख्य रूप से सिनेमा के क्षेत्र में स्त्री दृष्टि की अनुपस्थिति पर लिखा है। स्त्री दृष्टि के माध्यम से उन सभी चित्रों, फ्रेम और गतियों के विषय में लिखा जा सकता है जो अभी तक छिपी हुई थीं, "Women's vision is what you don't see; it is withdrawn, concealed. The images, the pictures, the frames, the movements, the rhythms, the abrupt new shots of which we have been deprived, these are the prisoners of women's vision, of a confined vision."[15] विवियन यह भी प्रश्न उठाती हैं कि ऐसा क्यों है कि जो कुछ भी पुरुषों के दृष्टिकोण को बाधित कर रहा है उस से छुटकारा पाने के लिए स्त्रियाँ ही उपयुक्त

हैं और इसका उत्तर भी वह स्वयं देती हैं, "Why will they be more apt to rid themselves of whatever obstructs men's vision? Because women are the secret to be discovered, they are the fissures. They are the source where no one has been."[16]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्त्री दृष्टि की सहायता से स्त्रियाँ सदियों की चुप्पी को तोड़ने में कामयाब हो रही हैं। इसके माध्यम से उनके व्यक्तिगत जीवन के उद्देश्य और उनके अपने अस्तित्व में सकारात्मक बदलाव आ रहे हैं। स्त्री दृष्टि से घटनाओं को समझने का महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि स्त्रियाँ न केवल स्वयं के अधिकारों की मांग करती हैं वरन औरों के लिए भी रूढ़िवादी परंपराओं और मान्यताओं पर प्रश्न उठाती हैं। स्त्री दृष्टि के माध्यम से वह समझ चुकी हैं कि जिसे वह अपनी वास्तविकता समझ रही थीं वह पितृसत्तात्मक मानसिकता है जो उसे व्यक्ति न मान कर वस्तु की श्रेणी में रखती है।

## 5.2- साहित्य में स्त्री दृष्टि

साहित्य की स्त्री दृष्टि वैचारिक अवधारणा है जिसके द्वारा रचनाकार एवं पाठक दोनों ही रूपों में स्त्रियों की सक्रिय उपस्थिति को स्वीकृति मिली है। साहित्य में पुरुष लेखकों द्वारा स्त्री को चित्रित करने की एक पुंसवादी दृष्टि रही है जिसका आधार समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। अतः प्रायः यह देखा जाता है कि जाने अनजाने ही पुरुष लेखकों द्वारा अपने रचनाकर्म में स्त्री-पुरुष संबंधों का रूढ़ चित्रण किया गया है। स्त्री दृष्टि, साहित्य का एक प्रकार से पुनर्मूल्यांकन करती है। स्त्री दृष्टि से साहित्य का पुनरपाठ करने पर यह तथ्य सामने आता है कि प्रायः स्त्री पात्र कठपुतलियों की भाँति दिखाई पड़ते हैं जिनसे वही करवाया जाता है जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था उनसे करवाना चाहती है।

स्त्री दृष्टि, पुरुष द्वारा कहे गए सच को आलोचना की दृष्टि से देखने वाला एक मूल्यांकन भी है। पितृसत्ता ने जहाँ स्त्रियों को कुछ भूमिकाएं सौंपी वहीं उसके चरित्र के लिए कुछ आदर्श भी सुझाए। स्त्री, पुरुष के लेखन को इस तरह  से देखती और समझती है कि पुरुष ने हमें अपनी इच्छा, रुचि और आवश्यकता के अनुकूल ढालने की कोशिश करते हुए हमारे प्रति अन्याय किया है। इस संबंध में ममता कालिया लिखती हैं, "पुरुषों द्वारा लिखी अपनी कथा और गाथा स्त्री को अधूरा इतिहास लगती है| इसीलिए कभी मीरा के रूप में, कभी अज्ञात हिंदू महिला के रूप में वह अपनी असमान स्थिति पर विचार करती है और पुरुषवादी समय में अपना सत सत्याग्रह दर्ज करती है।"[17] स्त्री विमर्श, स्त्री अस्मिता को केंद्र में लाकर उसे मनुष्य समझे जाने की आवश्यकता पर बल देता है अतः स्त्री दृष्टि अनिवार्य रूप से समाज की विभिन्न संस्थाओं- परिवार, विवाह, धर्म-न्याय, मीडिया और सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों को स्त्री के संदर्भ में देखती है।  "स्त्री-विमर्श केवल कोई सिद्धांत नहीं, सिद्धांत गढ़ने वाली एक दृष्टि है; दृष्टि जो दर्शन की सूत्रधार है, दर्शन जो ज्ञान के हर अनुशासन का मूल है। इसलिए स्त्री दृष्टि के रचे हुए दर्शन भी पितृ सत्ता के रचे हुए अनुशासनों के मूल में उतारने, उनसे लोहा लेने, अपने हाशियाकरण को निरस्त करने की प्रतिकारजनित यात्राएं हैं।[18] रोहिणी अग्रवाल साहित्य-पाठ की दो दृष्टियों की भिन्नताओं की ओर इंगित करते हुए लिखती हैं कि प्रथम दृष्टि पुरुष रचनाकारों द्वारा स्त्री को देखे-समझे-चित्रित किए जाने की पारंपरिक दृष्टि है जो स्त्री-पुरुष की रूढ़ छवियों को पोषित करते हुए चलती है।  इसी पारंपरिक दृष्टि के उदाहरण के रूप में कबीर, तुलसी की स्त्री विरोधी उक्तियों को लिया जा सकता है। प्रेमचंद द्वारा सचेतन आधुनिक युवती मालती को सही अर्थों में न चित्रित किए जाना साहित्य की पुंसवादी दृष्टि का ही परिणाम है। वहीं दूसरी दृष्टि आत्मान्वेषण की अकुलाहट से बँधी स्त्री दृष्टि है जो लैंगिक विभाजन के इर्द-गिर्द बुन दी गई स्त्री-पुरुष की भूमिकाओं और रूढ़ छवियों को निरंतर चुनौती देती है।[19]

रोहिणी अग्रवाल के अनुसार साहित्य की स्त्री दृष्टि चार रूपों में क्रियाशील दिखाई पड़ती है-[20]

1. साहित्य में स्त्री की स्वाभाविक और सहज भावनाओं, अनुभूतियों को दर्ज करने का प्रयास

2. पुरुष दृष्टि से रचे साहित्य का पुनर्पाठ
3. साहित्य सृजन द्वारा अपनी मनोकांक्षाओं की अभिव्यक्ति
4. लैंगिक पूर्वाग्रहों से मुक्त एक समग्र मनुष्य समाज की निर्मिति

भारतीय धर्म ग्रंथों, आचार संहिताओं का स्त्री दृष्टि से किए गए पुनर्पाठ तथा आलोचना ने साहित्य की स्त्री दृष्टि को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई| ताराबाई शिंदे, पंडित रमाबाई तथा एक अज्ञात हिंदू लेखिका ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में धर्म ग्रंथों में उल्लिखित स्त्री की दोयम स्थिति के संबंध में लिखने का साहसपूर्ण कार्य किया। 1882 में रचित कृति 'स्त्री-पुरुष तुलना' के माध्यम से ताराबाई शिंदे ने पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों और पुरुषों में भेद करने वाले धार्मिक ग्रंथों की कड़ी आलोचना की है| धर्म ग्रंथों की आलोचना करने के कारण इस पुस्तक को लेकर काफी विवाद हुआ तथा ताराबाई शिंदे को समाज से तिरस्कार झेलना पड़ा| शास्त्रों और पुराणों में उद्धृत वचनों को आधार बना कर नारी समाज की हो रही दुर्दशा के विषय में ताराबाई लिखती हैं, "उस जमाने के ऋषियों के बारे में भी क्या कहना? कोई गौ के पेट से जन्मा तो कोई हिरनी के पेट से। पक्षिणी के पेट से जन्मा भारद्वाज और गधी के पेट से जन्मा था वह गर्दभऋषि! इन लोगों के कहे-लिखे वाक्य जैसे वेदवाक्य हो गए और उसका परिणाम भुगतना पड़ा नारी को। ईश्वर निंदा के लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ परंतु इसके सिवा कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं है। शास्त्रों और पुराणों के उदाहरण देकर नारी को किस प्रकार झुकाया जा रहा है यह समझना तो चाहिए न?"[21] तत्कालीन समाज में विधवाओं के जीवन को नारकीय स्थिति में पँहुचाने वाले शास्त्रकर्ताओं के स्त्रियों के प्रति दोहरे मापदंड पर ताराबाई प्रश्न उठाती हैं, "जो गुजर गया, उसकी आयु समाप्त हुई इसलिए गया, तो उसकी पत्नी इस मृत्यु के लिए अपराधी कैसे हो जाती है? यदि विधवा को अपना उर्वरित जीवन अँधियारा, बदसूरत और भगवान का नाम लेकर ही बिताना है तो विधुर हुआ पुरुष भी यही स्थिति क्यों नहीं अपनाता? वह क्यों दूसरी शादी कर गृहस्थ धर्म अपनाता है? शास्त्रकर्ताओं की तिरछी नजर केवल स्त्रियों पर ही क्यों?[22]

सीमंतनी उपदेश के संपादक डॉ. धर्मवीर एक अज्ञात हिंदू औरत के विषय में लिखते हैं, "लेखिका ने पंडितों द्वारा स्थापित 'पतिव्रता धर्म' को उनका 'खुद-मतलबी-धर्म' कहा है| वे लिखती हैं- यह पतिव्रता धर्म नहीं, खुद मतलबी धर्म है। वे नया धर्म खड़ा करने की बात कह रही हैं। लेकिन इसमें उनकी यह इच्छा कतई नहीं है कि  मर्द स्त्री का गुलाम बन जाए। वे सदाचार की रक्षा करती हुई मर्द और औरत को बराबरी पर लाती हुई लिखती हैं-मेरा मतलब यह नहीं है कि मर्द स्त्री के ही वश में हो जाए। नहीं, जैसा पाप स्त्री को दूसरे पुरुष के पास जाने से होता है वैसे ही पुरुष को भी दूसरी स्त्री के पास जाने से समझाओ।[23]

पंडिता रमाबाई ने धार्मिक ग्रंथों के पुंसवादी दृष्टिकोण पर प्रश्न उठाते हुए पितृसत्ता को चुनौती दी। 1887 में उन्होंने धर्मशास्त्रों में वर्णित उन उद्धरणों तथा श्लोकों को पाठकों के समक्ष रखा जिनमें स्त्रियों के सदैव पराधीन रखने का पक्ष लिया जाता है। 'मनुस्मृति' की रमाबाई द्वारा की गई आलोचना का आधार स्त्री दृष्टि  ही है।  रमाबाई ने स्त्री शिक्षा का प्रचार-प्रसार करते हुए की कन्या विद्यालय खोले तथा लड़कियों की प्रारम्भिक शिक्षा के लिए आवश्यक अन्य भाषाओं की पुस्तकों का मराठी में अनुवाद भी किया। पुरुषोचित धर्म और स्त्रियोचित धर्म के दोहरे मापदंडों की ओर इंगित करते हुए रमाबाई लिखती हैं कि पुरुषोचित धर्म विशेषाधिकार और सम्मान से जुड़ा हुआ है वहीं स्त्रियोचित धर्म मात्र पति को भगवान मानना, पति की आज्ञा का पालन करना, स्वतंत्रता का लोभ न करना इत्यादि की ही स्वीकृति देता है। अपनी पुस्तक 'हिंदू स्त्री का जीवन' में रमाबाई ने 'बचपन', 'वैवाहिक जीवन', 'धर्म व समाज में स्त्रियों का स्थान', 'वैवाहिक अधिकार', 'वैधव्य' तथा 'स्त्रियों की स्थिति से समाज का रिश्ता' इत्यादि अध्यायों द्वारा तत्कालीन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति चित्रित की है| मनुस्मृति में स्त्रियों की स्थिति पर रमाबाई लिखती हैं, "जो व्यक्ति मूल संस्कृत साहित्य को कठिन परिश्रम व निष्पक्षता से पढ़ते हैं, यह पहचानने में कभी धोखा नहीं खा सकते कि आचार-संहिता निर्माता मनु उन कई सौ लोगों में से एक हैं, जिसने दुनिया की नजरों में स्त्रियों को घृणास्पद जीव बनाने में अपना सारा जोर लगा दिया।"[24]

इस प्रकार स्त्री दृष्टि के उत्थान को उपरोक्त विदुषियों द्वारा धर्मग्रंथों की स्त्री दृष्टि से की गई आलोचना के माध्यम से भी समझा जा सकता है।

छठी शताब्दी के पालि भाषा में रचित बौद्ध धर्म ग्रंथ 'थेरीगाथा' से स्त्री लेखन का आरंभ माना जाता है| इसमें संकलित कविताएं बौद्ध भिक्षुणियों या थेरियों की स्त्री दृष्टि का भी परिचय देती हैं। इस विषय में सुजाता लिखती हैं, "यह उद्वेलित करने वाला साहित्य है क्योंकि इसमें दर्ज अनुभव स्त्रियों के हैं। ये पुरखिन स्त्रियों की अभिव्यक्तियाँ हैं। थेरियाँ उन्हें कहा गया जो प्रबुद्ध और अनुभवी स्त्रियाँ थीं। यह न केवल स्त्री-लेखन के आदिम समाज में ले जाता है बल्कि बौद्धकालीन स्त्री-जीवन से परिचित कराता है। इस तरह प्राचीन भारत के इतिहास में स्त्रियों की स्थिति और उपस्थिति को समझने के लिए जरूरी दस्तावेज बन जाता है।[25]"

'थेरीगाथा' के बाद भक्तिकाल की काव्य परंपरा में महिला कवयित्रियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है जिसमें मीराबाई का नाम जग प्रसिद्ध है। सावित्री सिन्हा ने 'मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ' में उमा, पार्वती, मुक्ताबाई एवं झीमाचारिणी को मीरा से पहले स्थान दिया है। हिंदी साहित्य के इतिहास में इन कवयित्रियों को बहुत बाद में शामिल किया गया जबकि स्त्रियों द्वारा संत समाज में स्वयं को स्थापित करना भक्ति काव्य में प्रचलित पुंसवादी दृष्टि के विरोध का द्योतक है। "पुरुषवादी समीक्षा दृष्टिकोण ने स्त्री कवयित्रियों की कविताओं का कभी समग्रता से मूल्यांकन नहीं किया। इस दौर की स्त्री कविता सिर्फ कविता ही नहीं अपितु यह उनके राजनैतिक एवं वैचारिक संघर्ष का प्रतीक है।"[26] जगदीश्वर चतुर्वेदी के अनुसार इतिहास ग्रंथों की पहली रचनाकार स्त्रियों के होने के बावजूद पुरुष कवियों को निर्गुण काव्यधारा का प्रणेता माना गया। "[27] संत कवयित्रियों ने भक्ति के माध्यम से तत्कालीन समाज को सुधार के मार्ग पर लाने का भी प्रयास किया। उनकी रचनाओं को सिर्फ ईश्वर को समर्पित रचनाएं समझना, उनके सम्पूर्ण कृतित्व के साथ न्यायसंगत नहीं होगा। इन रचनाओं में सामंतवाद का विरोध स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। "व्यापारिक पूंजीवाद ही सामंतवाद पर

पूंजीवाद की विजय का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः उमा, पार्वती, मुक्ताबाई, झीमा चारणी एवं मीराबाई की कविताओं को व्यापारिक पूंजीवादी युग की कविता के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। "[28]

स्त्री ने साहित्य रचना तो बहुत पहले ही शुरू कर दी थी परंतु आलोचना के क्षेत्र में बाद में कदम रखे। स्त्रीवादी लेखिका सुजाता ने इस तथ्य की ओर ध्यान इंगित किया है कि हिंदी साहित्य में आलोचना को स्त्री दृष्टि से देखने की कोई प्रणाली विकसित नहीं की गई है। सुजाता लिखती हैं, "ऐसा कैसे संभव हुआ कि हिंदी आलोचना ने एक सदी के भीतर उभरी और प्रचलित हुई सभी वैचारिकियों को अपना आधार बनाया। मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद, उत्तराधुनिकता, उत्तर-औपनिवेशिकता, उत्तर-संरचनावाद यहाँ तक कि दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र भी लिख लिया गया लेकिन लेकिन ज्ञान की विभिन्न शाखाओं को प्रभावित करने वाले विचारों में स्त्रीवाद की कभी गिनती नहीं की गई। "[29]

मार्क्स ने शक्ति के वर्चस्व और असहाय के शोषण को श्रमिक वर्ग की दृष्टि से समझा था। इसी प्रकार पितृसत्ता के भीतर हो रहे नारी शोषण को स्त्री दृष्टि से ही समझा जा सकता है। साहित्य में जब स्त्रियों ने स्त्रीवाद के आधार पर लिखना शुरू किया तो साहित्य के भीतर पैठी पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा इसका विरोध हुआ। सुजाता इस विषय में लिखती हैं, "जब स्त्रियों ने एक नई धमक और स्त्री-विमर्श की पृष्ठभूमि के साथ लिखना शुरू किया तो साहित्य में छिपी महीन पितृसत्तात्मक ताकतों ने अपने पुराने खेल खूब खेले। स्त्री-लेखन में यह स्त्रीवादी स्वर जब असहज करने लगा तो एक शीत युद्ध ही उसके खिलाफ छेड़ दिया गया मानो युद्ध का बिगुल साहित्य के क्षेत्र में भी और आलोचना के क्षेत्र में भी बजा दिया गया। "[30]

आलोचना में पुरुषवादी दृष्टि के बहुत सारे प्रमाण मिलते हैं। उदाहरण के लिए मीराबाई के साहित्य में विद्रोह भाव की अपेक्षा मात्र भक्ति भाव को ही देखना, शिवरानी देवी द्वारा रचित कहानियों को प्रेमचंद का लेखन समझे जाना, सुभद्रा कुमारी चौहान को मात्र राष्ट्रीय धारा की कवयित्री की श्रेणी

में रखना तथा  महादेवी वर्मा को मात्र विरह-वेदना की कवयित्री कहे जाना जबकि स्त्री दृष्टि से देखने पर मीराबाई, शिवरानी देवी, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा महादेवी वर्मा के लेखन के स्त्री पाठ को भलीभाँति समझा जा सकता है। मीराबाई के काव्य को या तो चैतन्य महाप्रभु की परंपरा में मात्र 'पग घुँघरू बांध मीरा नाची' की दृष्टि से देखा गया या तो सूरदास और रसखान की परंपरा में 'बसो मेरे नैनन में नंदलाल' तक ही सीमित किया गया।[31]  मीरा राजसत्ता, कुल और पित्रसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देकर अपनी स्वतंत्र राहों का अन्वेषण करने हेतु बाहर की विस्तृत दुनिया में निकली, स्त्री चेतन की पर्याय हैं।  गत्यात्मकता, स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता और आर्थिक आत्मनिर्भरता के चलते वे पूरी पितृसत्तात्मक व्यवस्था से टकराने का साहस रखती हैं। मीराबाई के विषय में जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं, "भक्ति और माधुर्य तत्व के माध्यम से मीरा ने लिंगीय भेदभाव और सामाजिक वैषम्य दोनों को एक साथ चुनौती दी।  स्त्री के सामाजिक अधिकारों, खासकर स्त्री के मन एवं तन पर स्त्री के स्वामित्व की वकालत करने वाली वह पहली भारतीय लेखिका हैं। इसी अर्थ में वह स्त्रीवादी भी हैं। "[32]

मीराबाई की तरह ही सुभद्रा कुमारी चौहान के साहित्यिक मूल्यांकन में भी स्त्री दृष्टि की अनुपस्थिति को समझा जा सकता है। मात्र 'खूब लड़ी मर्दानी' के आधार पर उन्हें राष्ट्रवादी कवयित्री घोषित कर दिया जाता है।  'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी' तथा 'सीधे-साधे चित्र' कहानी संग्रहों के माध्यम से सुभद्रा कुमारी चौहान ने पितृसत्ता के अमानवीय रूप को भी उद्घाटित किया है। "सुभद्रा जी की कहानियों में नारी की विवशता का अंकन है तो दूसरी ओर उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व की माँग भी है। नारी की अपनी इच्छाएं, आकांक्षाएं हैं: उनकी पूर्ति का उसे पूर्ण अधिकार है। उनका कथन है, मनुष्य की आत्मा स्वतंत्र है, फिर चाहे वह स्त्री शरीर के अंदर निवास करती हो, चाहे वह पुरुष शरीर के अंदर। इसी से पुरुष और स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्व अलग रहता है। स्त्री के हृदय को पहचानो और उसे चारों ओर फैलने और विकसित होने का अवसर दो, यह न भूल जाओ कि उसका अपना भी एक व्यक्तित्व है।"[33]

शिवरानी देवी की रचनाओं में स्त्री दृष्टि का प्रभाव स्पष्टतया दिखाई पड़ता है। "शिवरानी की कहानियों में आए स्त्री-चरित्र बड़े ही ओजस्वी स्वभाव के हैं। स्त्रियाँ समाज या पुरुषों के अन्याय के आगे झुकती नहीं हैं, मौन भाव से अत्याचारों को सहन नहीं करतीं बल्कि सक्रिय विरोध करती हैं। "[34] 'करनी का फल', 'साहस', 'आँसू की दो बूँदें', 'नर्स', 'वधु परीक्षा', 'समझौता' तथा 'पुनर्मिलन' इत्यादि कहानियों के स्त्री पात्र शिवरानी देवी की व्यापक स्त्री दृष्टि के परिचायक हैं। शिवरानी देवी जिस तरह स्त्रियों की स्थिति को देखती हैं, उस तरह से प्रेमचंद नहीं देख पाते। 'प्रेमचंद घर में' पुस्तक प्रेमचंद के जीवन के उन अंशों का दस्तावेजीकरण है जहाँ पर वह शिवरानी देवी से रोजमर्रा की बातें कर रहे हैं। ऐसे तमाम प्रसंग आते हैं जहां पर शिवरानी देवी स्त्रियों के संबंध में प्रेमचंद के विचारों से सहमत नहीं हैं। प्रेमचंद ने पहली पत्नी को छोड़ कर शिवरानी देवी से विवाह किया था। पहली पत्नी को वह बदसूरत होने के साथ-साथ मन से भी खराब बताते थे। परंतु इस संबंध में शिवरानी देवी के विचार प्रेमचंद से सर्वथा भिन्न थे। शिवरानी देवी का कहना था, "एक की मिट्टी पलीद कर दी। जिसकी कुरेदन मुझे हमेशा होती है। जिसे मैं बुरा समझती हूँ, वह हमारे ही यहाँ हो और हमारे हाथों ही। मैं स्वयं तकलीफ सहने को तैयार हूँ; परंतु स्त्री जाति की तकलीफ मैं नहीं देख सकती। "[35] शिवरानी देवी का प्रेमचंद से यह कहना कि "अगर आप मेरी बीवी होते तो मैं बताती कि स्त्रियों के साथ कैसे रहना चाहिए" इस ओर इंगित करता है कि शिवरानी देवी पुरुष के नजरिए में स्त्री दृष्टि की आवश्यकता पर बल देती हैं। प्रेमचंद ने बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखे एक पत्र में यह स्वीकार किया है कि एक साहसी महिला का चित्रण वह शिवरानी देवी की भाँति नहीं कर सकते हैं। अपने पत्र में वह लिखते हैं, "अभी तक साहित्य जगत ने उनके (शिवरानी देवी) साथ न्याय नहीं किया क्योंकि मेरा व्यक्तित्व उनके व्यक्तित्व को ढक लेता है, शायद कुछ आदमी सोचते हों कि उनकी रचनाओं का वास्तविक लेखक मैं ही हूँ। मैं इंकार नहीं करता कि उनकी रचनाओं में साहित्यिक सजावट मेरी है लेकिन विचार और लेखन सर्वथा उन्हीं के होते हैं। उनकी प्रत्येक लाइन में एक ओजपूर्ण स्त्री का व्यक्तित्व प्रकट होता है। मेरे जैसे शांत

स्वभाव का आदमी इस प्रकार की दबंग औरतों के प्लाट की कल्पना भी नहीं कर सकता। (आजकल/नवम्बर 1953/14-15)"[36]

महादेवी वर्मा ने भी अपने साहित्यिक कर्म में स्त्री दृष्टि का परिचय दिया है। 'शृंखला की कड़ियाँ' में संकलित लेख 'घर और बाहर' में वह प्रश्न उठाती हैं कि क्या संकुचित दृष्टिकोण से स्त्रियों की स्थिति में सुधार संभव है? " हम स्त्री जीवन को, चारों ओर फैली हुई जटिलता में भी, आदिम काल के जीवन जैसा सरल बना कर रखना चाहते हैं, परंतु यह तो समाज तथा राष्ट्र के विकास की दृष्टि से संभव नहीं। वह घर में अन्नपूर्णा बने या न बने, केवल यही प्रश्न नहीं है, प्रत्युत यह भी समस्या है कि यदि वह अपने वात्सल्य के कुछ अंश को बाहर के संसार को देना चाहे तो घर उसे उसे ऐसा करने की स्वतंत्रता देगा या नहीं और यदि देगा तो किस मूल्य पर?[37] स्त्रियों की शिक्षा के संबंध में जब समाज सुधारकों द्वारा जो लिंग भेदीय दृष्टिकोण अपनाया था, इस संदर्भ में महादेवी वर्मा लिखती हैं, "जब स्त्रियों को, सुशिक्षिता बनाने के लिए सुविधाएं देने की चर्चा चली तो बहुत से व्यक्ति अगुवा बनने को दौड़ पड़े थे। यह कहना तो कठिन है इस प्रयत्न में कितना अंश अपनी ख्याति की इच्छा का था और कितना केवल स्त्रियों के प्रति सहानुभूति का; परंतु यह हम अवश्य कह सकते हैं कि ऐसे सुधारप्रिय व्यक्तियों का दृष्टिकोण भी संकुचित ही रहा। [38]सुजाता लिखती हैं, "स्त्रियों के लिए शास्त्रों में क्या कुछ लिखा गया है इसकी आलोचना अपने लेखों के बीच-बीच में कई जगह महादेवी वर्मा भी करती चलती हैं। स्त्री का स्वभाव अनुकरण करने का बनाया गया है और शास्त्रों ने तय किया कि उसे स्वतंत्रता न मिले, यह संस्कृत में एम. ए. स्त्रीवादी महादेवी खूब समझ पा रही थीं। याज्ञवलक्य से शास्त्रार्थ करती गार्गी में वे चिंतनशील स्त्री के दर्शन करती हैं तो राम से प्रश्नोन्मुख सीता को भी देखती हैं। 'स्त्री न स्वातंत्रयं अहर्ति' शास्त्रों ने ही कहा है न! स्त्री को लेखन में एक प्रोफेशनल की तरह देखने की मंशा रखती हैं। "[39]

हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार राजेन्द्र यादव ने अपनी रचनाओं में पुंसवादी दृष्टि और स्त्रीवादी दृष्टि दोनों का परिचय दिया है। प्रभा खेतान इस विषय में लिखती हैं, "राजेन्द्र जी के चिंतन-जगत को

दो हिस्सों में बाँट कर समझा जा सकता है। एक तरफ वह हिस्सा है जो शायद अपनी समकालीनता में अनूठा है, अर्थात इस हिस्से में राजेंद्र यादव ही 'औरतों के पचड़े' पर चिंतित नजर आते हैं, नारी-लेखन को प्रोत्साहन देते हैं और नारी मुक्ति के विमर्श को साहित्य-संस्कृति की दुनिया के केंद्र में लाने में लगे हुए हैं। ... दूसरी तरफ राजेन्द्र यादव का वह हिस्सा है जो उनके चिंतन को स्त्री के दैहिक अस्तित्व से आगे नहीं जाने देता और उनसे एक ऐसा लेख लिखवाता है जिसकी भाषा-शैली के वे स्वयं एक अंग बन जाते हैं। ... अगर यह दूसरा हिस्सा राजेंद्र जी के ऊपर हावी न हो गया होता तो नारी विशेषांकों की समृद्ध परंपरा के जनक की कलम से 'होना/सोना' न निकलता। ,,[40]

हिंदी साहित्य में कुछ लेखिकाओं और आलोचकों का समूह ऐसा है जो स्त्री और पुरुष को आधार बना कर किए गए लेखन के वर्गीकरण को स्वीकार नहीं करती हैं, "निर्मला जैन जैसी सुलझी आलोचिका एवं मृदुला गर्ग जैसी यशस्वी लेखिका "स्त्री दृष्टि" एवं "स्त्री लेखन" की कोटि को स्वीकार नहीं करतीं। जबकि हकीकत यह है कि स्त्री की स्वतंत्र दृष्टि होती है, स्वतंत्र संस्कृति होती है, स्वतंत्र इतिहासबोध एवं इतिहासदृष्टि भी होती है साथ ही स्त्री की अनुभूतियाँ मर्दों की अनुभूतियों से भिन्न होती हैं। यह भिन्नता उसे सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों से मिली है।"[41] इस संदर्भ में चंद्रा सदायत लिखती हैं, "जब मृदुला गर्ग यह कहती हैं कि नारीवादी लेखक का संबंध लिंग से नहीं भावबोध, जीवन दृष्टि और चेतना से है तब वे यह भूल जाती हैं कि किसी लेखक के भावबोध, जीवन दृष्टि और चेतना का निर्माण हवा में नहीं होता, वह जिस समाज में रहता है उस समाज के जीवन, संस्कृति और साहित्य से होता है। जो पितृसत्ताक समाज लिंगभेद का जनक और पोषक है, जो जन्म से मृत्यु तक स्त्री-पुरुष का भेद बनाए रखता है और स्त्री को जीवन भर प्रत्येक क्षण स्त्री होने का ज्ञान, पहचान और अनुभव कराता रहता है। उसमें जीने वाले किसी भी व्यक्ति खास तौर पर किसी स्त्री का भावबोध, जीवन दृष्टि और चेतना का स्वरूप लिंगभेद से मुक्त कैसे हो सकता है। सच बात तो यह है कि स्त्री और पुरुष लेखन में भावबोध, जीवनदृष्टि और चेतना के स्तर पर जो

फर्क होता है वही उनकी रचनाशीलता में भी व्यक्त होती है और उसी फर्क की पहचान साहित्य की आलोचना में स्त्री-दृष्टि की पहली शर्त है। "[42] "चंद्रा सदायत ने भारतीय संदर्भ में स्त्री-दृष्टि की महत्ता स्थापित करते हुए लिखा कि "भारत जैसे एक परंपराबद्ध समाज में सत्ता, शास्त्र, लोकमत और पुरुष की अधीनता में जीती स्त्री को अपने व्यक्तित्व तथा अस्तित्व की स्वतंत्रता के लिए जैसा कठिन संघर्ष करना पड़ता है उसे पुरुष दृष्टि से नहीं पहचाना जा सकता। "[43]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक परिदृश्य पर पितृसत्तात्मक व्यवस्था का आधिपत्य होने के कारण स्त्री दृष्टि और स्त्री साहित्य की कोटि को सर्व स्वीकृति मिलने में अभी समय है पर हाशिए के साहित्य को उसका उचित देय दिलाने के लिए स्त्री दृष्टि के माध्यम से साहित्य के पुनर्पाठ की महती आवश्यकता है।

## 5.3- स्त्री साहित्य में स्त्री होने का आशय: कृष्णा सोबती

साहित्य की विभिन्न विधाओं द्वारा स्त्री का चित्रण विविध रूपों में किया गया है। हिन्दी साहित्य में चित्रित यह नारी रूप कभी परंपराओं के बंधन में बंधा प्रतीत होता है तो कभी स्त्री की स्वतंत्रता और उन्मुक्तता का प्रतीक भी बन जाता है। स्त्री की अबला, पीड़ित, व्यथित, विरहिणी तथा विद्रोहिणी, स्वतंत्र इत्यादि छवियों के साथ ही स्त्री के यथार्थ का चित्रण भी शीर्षस्थ कथाकारों द्वारा किया गया है। स्त्री का यह वास्तविक रूप उसकी आकांक्षाओं, संवेदनशीलता तथा दुर्बलता इत्यादि को एक साथ गढ़ कर सामने आता है। कृष्णा सोबती ऐसी ही साहित्यकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री का चित्रण वास्तविकता के धरातल पर किया है। कृष्णा सोबती के स्त्री पात्रों का कोई रूप थोपा हुआ प्रतीत नहीं होता है। स्त्री की दारुण छवि से लेकर यौन इच्छाओं के प्रति सचेत, उन्मुक्त स्त्री छवि सभी अपने स्वाभाविक रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होते हैं। भारत की आधुनिक स्त्री की आशाओं, आकांक्षाओं और सपनों को बखूबी समझते हुए कृष्णा सोबती सोबती स्त्री दृष्टि के आधार पर हो रहे साहित्य के पुनर्पाठ के विषय में लिखती हैं, "भारत की नई

स्त्री राष्ट्रीय जीवन में नई ऊर्जा, नए तेवर और आत्मबल से सहभागी होने की भूमिका निभाने का सपना देख रही है। साहित्य में स्त्री-लेखन को लेकर अतिरिक्त विचार-विमर्श उभर रहा है। विपरीत दिशाओं से स्त्री-पाठ को अरखा-परखा और जांचा जा रहा है। "[44]

कृष्णा सोबती का मानना है कि उनका लेखन भारतीय चिंतन में अर्धनारीश्वर की अवधारणा का संप्रेषक है। वे लिखती हैं, "भारतीय चिंतन में अर्धनारीश्वर की एक अद्भुत अवधारणा है, एक इकाई जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों समाहित है। मेरी कला में, मैं कह सकती हूँ, इसको अभिव्यक्ति मिली है। "[45] जो साहित्य में स्त्रीदृष्टि है, कृष्णा सोबती के शब्दों में वह लेखक की अंतर्दृष्टि है। लेखक की अंतर्दृष्टि को वह स्त्री और पुरुष की अलग-अलग श्रेणियों में बांटने की समर्थक नहीं हैं। लेखक की स्वतंत्र अंतर्दृष्टि के संबंध में कृष्णा सोबती का कहना है, "जरूरी तौर पर लेखक वह नहीं जो उसके पात्र हैं और पात्र भी वह नहीं जो लेखक है। जो दृष्टि उन्हें चीन्ह रही थी वह जरूर लेखक की है। यही महत्वपूर्ण है। लेखक की अंतर्दृष्टि। "[46] लेखन में स्त्री दृष्टि की अनुपस्थिति पर कृष्णा सोबती का कहना है, "स्त्रियों को सदैव पुरुषों की नजर से ही देखा गया है और उन्हीं के नजरिए से पेश किया गया है। अब वह स्वयं अपने आपको देख रही हैं। और एक नए नजरिए से पुरुष को भी। "[47]

कृष्णा सोबती के स्त्री विमर्श को महादेवी वर्मा द्वारा शुरू किए स्त्री विमर्श का अगला पड़ाव माना जाता है। महादेवी वर्मा ने 'शृंखला की कड़ियाँ' में स्पष्ट रूप से स्त्री-प्रश्नों को सामने रखा है परंतु 'शृंखला की कड़ियाँ' से पूर्व भी उन्होंने संस्मरणों तथा कहानियों के माध्यम से स्त्री-जीवन के वैषम्य और शोषण को रेखांकित किया। 'अतीत के चलचित्र' तथा 'स्मृति की रेखाएं' में 'घीसा', 'अनाहूत की माँ', 'विधवा', 'दो फूल' तथा 'लक्षमा' इत्यादि संस्मरणों के माध्यम से उन्होंने नारी-शोषण के साथ ही उसके संघर्ष को भी रूपायित किया है। 'दो फूल' में लेखिका का सामना जब एक बाल विधवा से होता है जो विधवा अवस्था में एक बच्चे की माँ बन जाती है। सामाजिक दबाव के चलते दादा और बुआ चाहते हैं कि विधवा अपने बच्चे को अनाथाश्रम में छोड़ दे पर

वह बाल विधवा अपना मातृत्व नहीं छोड़ना चाहती। विधवा को देख कर लेखिका का मन पाखंडी समाज के प्रति वितृष्णा से भर उठता है। वह सोचती है कि काश इस बाल विधवा में यह कहने का साहस होता, "बर्बरो, तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया; पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी' तो इनकी समस्याएं तुरन्त सुलझ जावें। जो समाज इन्हें वीरता, साहस और त्याग भरे मातृत्व के साथ नहीं स्वीकार कर सकता, क्या वह इनकी कायरता और दैन्य भरी मूर्ति को ऊंचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर पूजेगा? युगों से पुरुष स्त्री को उसकी शक्ति के लिए नहीं, सहनशक्ति के लिए ही दण्ड देता आ रहा है।"[48] इसप्रकार महादेवी वर्मा ने जहां भारतीय सामाजिक व्यवस्था के पारंपरिक रूप में स्त्री की स्वयं की पहचान का प्रश्न उठाया वहीं कृष्णा सोबती ने इस पड़ाव से आगे बढ़ते हुए हिंदी साहित्य में स्त्री दृष्टि को स्थापित किया। कृष्णा सोबती की स्त्री दृष्टि एकाकी नहीं है। अपने उपन्यासों में चित्रित स्त्री पात्रों के माध्यम से वह स्त्री के हर रूप-समर्पित स्त्री, परिवार की बंदिशों में संतुष्ट स्त्री, यौनिक अभिव्यक्ति के प्रति मुखर स्त्री, आत्मनिर्भर तथा सजग स्त्री इत्यादि को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती हैं।

कृष्णा सोबती की स्त्री दृष्टि में उत्तरोत्तर विकास के तीन सोपान दिखाई पड़ते हैं। प्रथम सोपान के अंतर्गत कृष्णा सोबती अपने प्रारम्भिक उपन्यासों में जिस स्त्री दृष्टि का परिचय देती हैं वह स्त्री को वस्तु या सामाजिक, पारिवारिक संपत्ति न मान कर व्यक्ति मानने के दृष्टिबोध को जागृत करती है। 'डार से बिछुड़ी' की पाशो, 'तिन पहाड़' की जया ऐसे स्त्री पात्र हैं जो पितृसत्ता की रूढ़िवादी संरचना के विरोध में खड़े तो होते हैं परंतु इन पात्रों की अपनी सीमाएं हैं। उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' में नानी के घर में तमाम पारिवारिक यंत्रणाओं से मुक्ति की चाह में पाशो का रातों रात घर से भागना पितृसत्तात्मक पारिवारिक सीमाओं का अतिक्रमण करता है इस संबंध में प्रो. सविता सिंह लिखती हैं, "वह पितृसत्ता के लिहाज से एक संदिग्ध पात्र है, वह एक अतिक्रमणकर्ता है। उसे अपने शाह आलमी में एक मुसलमान लड़के द्वारा एक उपहार स्वीकार करते हुए पाया जाता है। उसे दंड दिया जाता है, एकांत में रखा जाता है, भोजन नहीं दिया जाता। उसे यंत्रणा के इस चेंबर को छोड़ते हुए

अपने वजूद को कायम रखना है। "[49] जिस प्रकार घर की दहलीज लाँघने के बाद से पाशो का हर कदम पर जो शोषण होता है उसके माध्यम से प्रो. सविता सिंह 'डार से बिछुड़ी' के एक उपपाठ की ओर संकेत करते हुए लिखती हैं, "यह उपपाठ एक छिपे हुए संदेश की तरह है कि राष्ट्र खुद को किसी महिला के लिए एक घर की तरह संघटित नहीं करता, न ही यह एक स्त्री का घर होता है, चाहे कितनी ही नई नींवों पर राष्ट्र को क्यों न बनाया गया हो। यहाँ तो सिर्फ पितृसत्ता होती है।"[50]

उपन्यास 'तिन पहाड़' में नायिका जया एक स्वाभिमानी युवती है लेकिन कोरी भावुकता के आगे उसका प्रतिरोध थम सा जाता है। इस संबंध में रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं, "जया में पानी की तरलता है, लेकिन आकारहीनता नहीं। श्री-ऐडना-विवाह का समाचार पाते ही पहली प्रतिक्रियास्वरूप जया का चुपचाप दार्जिलिंग निकल जाना दो बातों की ओर संकेत करता है। प्रथम, गलत का प्रतिरोध करने का सामर्थ्य। दूसरे स्वप्न पुरुष के संबल के बिना जीवन न जी पाने का विश्वास। ... वह 'अपने होने' को शिद्दत से महसूस कर पाई है, लेकिन 'अपने होने' को समाज तक 'एसर्ट' नहीं कर पाई। "[51] " 'तिन पहाड़' लेखिका की कच्ची उम्र की रोमानियत से भरपूर अपरिपक्व कथा है। वर्ड्सवर्थ के शब्दों में कहें तो शक्तिशाली भावनाओं का स्फूर्त प्रवाह- एक निरा भावोच्छवास जिसे विश्रांति में पुनर्जीवित नहीं किया गया है, बल्कि श्रम से संवारा गया है, बेहद खूबसूरत पच्चीकारी करके। इसलिए भावाकुलता के चलते अभिव्यक्ति काव्यात्मक हो उठी है-लय, ताल और बिम्ब से मढ़ी।"[52]

द्वितीय सोपान के अंतर्गत 'मित्रो मरजानी' 'सूरजमुखी अंधेरे के' और 'दिलोदानिश' के माध्यम से कृष्णा सोबती ने संघर्ष करते स्त्री पात्रों को चित्रित करके स्त्री दृष्टि की व्यापकता का परिचय दिया है।

उपन्यास 'मित्रो मरजानी' की मित्रो सामंती पितृ व्यवस्था वाले परिवार में भी रीति-रिवाजों, नियम-कानूनों तथा नैतिकता के तथाकथित मानदंडों को देखने, समझने और परखने की स्वतंत्र दृष्टि रखती है। मित्रो पारिवारिक नियम-कायदों को न अपनी सास धनवंती और जेठानी सुहागवंती की दृष्टि से देखती है जिनके लिए पति का दर्जा मालिक का है और न ही अपनी माँ बालो की दृष्टि से देखती है जिसके लिए दैहिक सुख की प्राप्ति ही जीवन की मूल निधि है। उपन्यास से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

परिवार के बाहर पुरुषों के साथ हँसी-ठिठोली करने के कारण जब सास-ससुर के समक्ष उसकी पेशी लगती है, जेठ बनवारी लाल उससे पूछता है कि उसके चरित्र के बारे में पास-पड़ोस में जो बातें हो रही हैं, वे सच हैं या झूठ? तो वह तपाक से बोलती है-"सोने-सी अपनी देह झुर-झुरकर जला लूँ या गुलजारी देवर की घरवाली की न्याई सुई-सिलाई के पीछे जान खपा लूँ? सच तो यूँ, जेठ जी, कि दीन-दुनिया बिसरा मैं मनुक्ख की जात से हँस-खेल लेती हूँ। झूठ यूँ कि खसम का दिया राजपाट छोड़े मैं कोठे पर तो नहीं जा बैठी?"[53]

मित्रो मातृत्व का सुख पाना चाहती है और यह एक बड़ी वजह है जिससे वह अपने पति से असंतुष्ट रहती है। उसकी सास जब जेठानी सुहागवंती के गर्भधारण करने की खबर सुन कर खुश होती है तो मित्रो सोच में पड़ जाती है- "जिन्द-जान का यह कैसा व्यापार? अपने लड़के बीज डालें तो पुण्य, दूजे डालें तो कुकर्म!"[54] मित्रो की माँ बालो एक अपने समय की मशहूर कसबन थी। बालो की उम्र अब ढल चुकी है और मुहल्ले में उसकी अब कोई पूँछ नहीं रह गई है। मित्रो जब माँ से मिलने मायके आती है तो माँ हँसी-ठिठोली में ही उससे कहती है कि मित्रो चाहे तो पति सरदारी को छोड़ कर उसके पुराने मित्र डिप्टी से रात में मिल सकती है। पहले तो मित्रो मान जाती है परंतु बालो के नितांत सूने और एकाकी जीवन देख कर बोध होता है कि दैहिक सुख जीवन का एक अंश मात्र है, वह बालो से कहती है, "तू सिद्ध भैरों की चेली, अब अपनी खाली कड़ाही में मेरी और मेरे खसम की मछली तलेगी? सो न होगा, बीबो, कहे देती हूँ!"[55]

उपन्यास 'सूरजमुखी अँधेरे के' में अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत रत्ती के विषय में रोहिणी अग्रवाल का कहना है, "रत्ती 'संबंध' की स्निग्ध आत्मीयता में बलात्कार की हिंसक पाशविक स्मृति धो डालना चाहती है। उसकी दृष्टि में उपलब्धि एवं आनंदजन्य सुख एक का हो, वह संबंध नहीं क्योंकि पाने के लिए दोनों को एक दूसरे को चाहना होता है। "[56] रतिका, दिवाकर और प्रीति के दांपत्य जीवन को तोड़ना नहीं चाहती। स्त्री दृष्टि से वह प्रीति की वेदना को समझने में सक्षम है। "मैं जुड़े हुए को नहीं तोड़ूँगी। विभाजन नहीं करूँगी। मेरी देह अब तुम्हारी प्रार्थना है दिवाकर!"[57]

उपन्यास 'दिलोंदानिश' में कुटुंब प्यारी, बउआ जी छुन्ना बीबी और महकबानो के माध्यम से कृष्णा सोबती ने ऐसे प्रश्नों को उठाया है जो बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में दूसरी लहर के स्त्री आंदोलनों के मुख्य मुद्दे रहे हैं। उपन्यास का कथानक बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में दिल्ली की साझी संस्कृति पर आधारित है परंतु स्त्री प्रश्नों पर मंथन करने के क्रम में यह उपन्यास स्त्री दृष्टि की दूरदर्शिता का परिचायक है। वसुधा डालमिया इस संदर्भ में लिखती हैं, "हालाँकि आख्यान बीसवीं सदी के पहले दशकों में फ़सील के अंदर बसी दिल्ली में स्थित है, इसने जो दृष्टिकोण अपनाया है, 1970 और 1980 के दशक के स्त्री आंदोलन के बिना उसकी कल्पना करना कठिन होगा। यह कृपानारायण और तीन स्त्रियों के जीवनों को शहर में आ रहे परिवर्तनों में गूँथ देता है और उनकी आंतरिकताओं और आपसी व्यवहार को ऐसे दृष्टिकोण से देखता है जो केवल पुनरावलोकन में ठोस रूप पा सकता है। कुटुंबप्यारी का प्रश्न कि क्या हवेली में स्त्रियों के लिए अधिकारों की बात सोची गई है?, बउआ जी के शब्द कि केवल पुरुष वे जीवन जी सकते हैं जो वे जीते हैं; क्योंकि उनके पास आर्थिक स्वतंत्रता है, महक की खोज कि वह दुनिया में बाहर जाने के लिए अपनी जूतियाँ पहन सकती है, छुन्ना का यह समझ लेना कि विधवा बहुएं अगर मामला अपने हाथों में न लें; तो उनसे दुर्व्यवहार होता ही रहेगा, स्त्रियों के सशक्तिकरण को लेकर समकालीन सरोकारों को प्रतिबिंबित करते हैं। "[58]

तीसरे सोपान के अंतर्गत, एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था जहां स्त्री को सदैव दोयम दर्जा दिया गया है ऐसी संरचना में 'समय सरगम' की अरण्या और 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' की सोबतीबाई तथा अंतिम उपन्यास की नायिका चन्ना जैसे पात्रों का सृजन उनकी परिपक्व स्त्री दृष्टि का परिचायक है। 'समय सरगम' की नायिका अरण्या बुजुर्ग महिला है जिसने जीवन अपनी शर्तों पर जिया है और जीवन से वह पूरी तरह संतुष्ट भी है। ब्रोकर से हुई अनबन के कारण अरण्या को अपना फ्लैट बेचना पड़ता है, ईशान का यह मानना है कि अरण्या की मनमानी के कारण फ्लैट बिकने की नौबत आई। परंतु अरण्या इस घटना को ईशान से भिन्न दृष्टिकोण से देखती है। और उसे आश्चर्य होता है कि क्योंकि उसका दृष्टिकोण ईशान से भिन्न है। इसलिए ईशान उसे जिद्दी समझ रहे हैं, "अरण्या सोचने लगी असल बात तो यह कि आप किसके द्वारा देखे जा रहे हैं। लगता है कोई जाना-अनजाना पाठ अनुदित हो रहा है। अनुवाद में कभी इतना ठीक लगे जैसे कोई दूसरा नहीं, आप ही अपनी बात व्यक्त कर रहे हैं। कभी आपकी अन्तर्भाषा से इतनी दूर कि सुनकर बौखलाहट होने लगे। शब्दों में आत्मीयता और परायापन एक साथ। मर्म से बाहर हुए नहीं कि दूसरा घायल।"[59]

'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान की नायिका सोबतीबाई विभाजन के बाद लाहौर से दिल्ली और दिल्ली से गुजरात के सिरोही प्रांत में नौकरी के लिए आती है। सोबतीबाई पूरी लगन और मेहनत से सिरोही राज्य में बच्चों की शिक्षा के लिए शिशुशाला स्थापित करने का प्रयास करती हैं परंतु रियासत की अंदरूनी राजनीति के कारण शिशुशाला न खुल पाने की स्थिति में सोबतीबाई को 'सिरोही रियासत' के कुँवर तेज सिंह की गवर्नेस के रूप में नियुक्त कर दिया जाता है। सियासती तामझाम के बीच सोबती बाई "उस बच्चे को अतीत, वर्तमान और भविष्य का भान कराने की कोशिश करती हैं, खासकर सत्ता से बेदखली का। सोबतीबाई के अंदर स्वतंत्र देश के नागरिक का विचार जन्म ले चुका है। वह स्वाभिमानी दिखती हैं और रियासती गुलमियों से खुद को मुक्त रखने में कामयाब होती हैं। "[60]

उपन्यास 'चन्ना' में विभाजन पूर्व के पंजाब में जन्मी चन्ना अपने विचारों और निर्णयों के माध्यम से आधुनिक स्त्री छवि को जीवंत रूप देती है। विवाह के पश्चात किसी पुरुष पर आश्रित रह कर जीवन जीने  के बजाय वह गाँव में अपने नाना शाह जी के खेतों और जमीनों के रख-रखाव का निर्णय लेती है। प्रो. चमनलाल चन्ना के व्यक्तिव के विषय में लिखते हैं, "चन्ना का किरदार एक जटिल किरदार है , जिसने मुश्किल हालात में अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व हासिल किया है। शायद कृष्णा सोबती के अपने व्यक्तित्व की कुछ झलक भी चन्ना में है, क्योंकि लेखिका ने इतना बड़ा उपन्यास 27 वर्ष की उम्र में ही 1952 में पूरा कर लिया था और अपनी पहली इतनी बड़ी कथात्मक रचना में लेखक के अपने व्यक्तित्व की झलक किसी चरित्र में जरूर झलकती है और लेखिका की पारिवारिक पृष्ठभूमि में चन्ना जैसी लड़की उनके अपने व्यक्तित्व के करीब लगती है।"[61]

इस प्रकार उपरोक्त तीन सोपानों के माध्यम से यह समझा जा सकता है कि किस प्रकार स्त्री दृष्टि के माध्यम से कृष्णा सोबती स्त्री के यथार्थ को चित्रित करते हुए स्त्री सशक्तिकरण का पथ विस्तृत करती हैं, इस संबंध में प्रो. सविता सिंह लिखती हैं, "कृष्णा सोबती के उपन्यास ऐसे थे जिनमें 'स्त्रियों की ऐसी आवाज' थी, जिसे अभी तक सुना नहीं गया था।  यह स्त्रियों की एक ऐसी आवाज थी, जिसे किसी पुरुष लेखक ने शब्दबद्ध नहीं किया था, बल्कि इसे खुद एक सशक्त महिला लेखिका द्वारा शब्दबद्ध किया गया था। उन्होंने उस अचेतन को चुनौती दी, जहाँ महिलाओं की सीधी-सादी, सुशील और विनम्र जैसी छवियों को मजबूत किया जा रहा था। पुरुष लेखकों द्वारा महिलाओं की इन छवियों को इस तरह गढ़ा जा रहा था कि महिलाएं प्रेम करने लायक लगें..प्रेमिका और प्रेयसी जैसी निर्मितियों को रचा जा रहा था। "[62]

कृष्णा सोबती की स्त्री दृष्टि की यह विशेषता है कि अपने लेखन में वह जब पुरुष पात्रों को चित्रण करती हैं तो पुरुष पात्रों को स्त्री के प्रतिपक्ष में खड़ा नहीं करतीं। कृष्णा सोबती यह देखने में समर्थ में हैं कि सामाजिक संरचना एक जटिल संरचना है और इसका विभाजन स्त्री और पुरुष को मात्र दो भिन्न खेमों में रख कर नहीं किया जा सकता है| राजेंद्र यादव अपनी पुस्तक 'आदमी की निगाह में

औरत' में लिखते हैं, "पुरुष के प्रति किसी भी प्रकार के असम्मानजनक संकेत भी उनके यहाँ नहीं मिलते, न व्यक्ति की तरह, न हजारों वर्षों की साजिश के प्रतिनधि की तरह। उनके पात्रों में न कहीं विद्रोही होने का दंभ दिखाई देता है, न किसी को छोटा करने का अहंकार। अपनी ही जिंदगी को सुलझाते, उलझाते, बढ़ते-लौटते उनके पात्रों के लिए सामाजिक मान्यताएं, श्लील-अश्लील, नैतिक-अनैतिक कहीं कुछ है ही नहीं। "[63]

कृष्णा सोबती स्त्री और पुरुष को एक दूसरे का विरोधी देखने के बजाय उन्हें बराबरी के स्तर पर देखने का पक्ष लेते हुए लिखती हैं, "स्त्री-पुरुष एक दूसरे के निकटतम हैं, घनिष्ठ हैं, मित्र हैं, पूरक हैं, स्वामी और दास नहीं। किसी के भी तनाव को, रोष को, विरोध को हमें किसी एक में नहीं देखना होगा। किसी एक को नहीं देखना होगा। नीचे-ऊपर से नहीं, आमने-सामने से बराबरी का संवाद करना होगा। "[64]

उपन्यास 'सूरजमुखी अँधेरे के' में दिवाकर, असद तथा उपन्यास 'समय सरगम' में ईशान के माध्यम से उन्होंने ऐसे पुरुष पात्रों को चित्रित किया है जो स्त्री संवेदनाओं को समझने में सक्षम हैं।

दिवाकर ने रतिका को उसके अन्य पुरुष मित्रों की भाँति मात्र देह नहीं समझा। "रत्ती दिवाकर के सानिध्य में अपने भीतर छिपे नारीत्व से साक्षात्कार कर शापमुक्त हो सकी क्योंकि उसने रत्ती से सिर्फ पाने की अपेक्षा नहीं की, बदले में भरपूर देने का भी उद्योग किया। 'देह' समझ कर रत्ती की भावनाओं से खिलवाड़ नहीं किया, 'व्यक्ति' मानकर निरंतर उसके आत्मसम्मान को बनाए रखा। "[65]

उपन्यास 'समय सरगम' में ईशान के माध्यम से कृष्णा सोबती इस तथ्य पर जोर देती हैं कि स्त्री और पुरुष के बीच मित्रता का संबंध किसी भी अन्य संबंध की बुनियाद होनी चाहिए। इस संदर्भ में उपन्यास 'समय सरगम' में ईशान द्वारा कहा गया निम्न उद्धरण द्रष्टव्य है- "तुम सम्पूर्ण पुरुष नहीं हो सकते अगर स्त्री की तरह प्यार करना न सीखो। "[66]

'समय सरगम' के पात्रों अरण्या और ईशान के माध्यम से कृष्णा सोबती स्त्री और पुरुष के समान मानवीय अधिकारों की भी बात करती हैं, "सृष्टि के दो मन, स्त्री-पुरुष अलग-अलग दिशाओं ये एक ही बिन्दु को देख रहे हैं, देख रहे हैं कि मानवीय होने के एक-से अधिकार को पा सकें। जी सकें। "[67]

इस प्रकार प्रारम्भिक उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' से लेकर अंतिम उपन्यास 'चन्ना' तक कृष्णा सोबती की स्त्री दृष्टि का क्रमिक विकास दिखाई पड़ता है। उनके नारी पात्रों के विषय में आलोचक रोहिणी अग्रवाल का कहना है, "जहां हिंदी कथा साहित्य की अन्य नारियां अथक संघर्ष के बाद उपलब्धि के नाम पर रिक्ति के बोध से ग्रस्त हो जाती हैं, वहीं कृष्णा सोबती की नायिकाएं अधिकार के नाम पर कोई स्थूल सुविधा पाकर भी असीम परितोष से भर उठती हैं। वे याचक या योद्धा की मुद्रा में समाज से अपने अधिकार नहीं मांगती। किसी भौतिक उपलब्धि को पाना उनका ध्येय भी नहीं। जहां कुटुंब की तरह वे ऐसा करती हैं, मुंह की कहती हैं। वे सिर्फ आत्मसम्मान बनाए रखना चाहती हैं- अपनी नजरों में, समाज की नजरों में। जब-जब वे आत्मदया से ग्रस्त हुई हैं, पीड़ित हुई हैं। पाशो, जया तथा प्रारंभिक रत्ती व महक इसके उदाहरण हैं। इसलिए सबसे पहले वे आत्मबल संचित करती हैं- किसी का संभाल लिए बिना अपने बूते अपनी लड़ाई लड़ने का हौसला उनकी अपराजेय जीवनी शक्ति का स्रोत है। "[68]

## 5.4- स्त्री साहित्य में स्त्री होने का आशय: इंदिरा गोस्वामी

इंदिरा गोस्वामी ने भारतीय समाज में स्त्री जीवन के यथार्थ को निष्पक्षता के साथ पृष्ठों पर उतारा है| इंदिरा गोस्वामी के प्रथम उपन्यास 'चेनाबेर स्रोत'(1972) से लेकर उनके अंतिम उपन्यास 'थेंगफाखरीर तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल' (2009) के माध्यम से उनकी स्त्री दृष्टि के उत्तरोत्तर विकास को समझा जा सकता है| सबरीन अहमद अपने आलेख 'Trouma and Therapy: A Study of Depression Narratives in Indira Goswami's Autobiographical

writings' में लिखती हैं कि मूलरूप से असमिया में लिखे होने के बावजूद इंदिरा गोस्वामी का लेखन भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए भारत के भिन्न भू-भागों के सामाजिक जीवन का यथार्थपरक चित्रण स्त्री दृष्टि के आधार पर करता है- "Indira Goswami is one of the prominent voices among Indian literatures, though written primarly in Assamese, her literary works transcend boundaries of Assam and give a realistic picture of social life in various parts of India as seen through her feminist lens."[69]

इंदिरा गोस्वामी ने भिन्न भू-भागों को चित्रित करने के साथ ही विभिन्न मुद्दों को भी अपनी लेखनी के केंद्र में रखा है। श्रमिक जीवन की पृष्ठभूमि पर लिखे गए तीनों उपन्यासों 'चेनाबेर स्रोत', 'अहिरण' तथा 'मामरे धरा तारोवाल' में इंदिरा गोस्वामी ने वर्कसाइट्स से जुड़ी छोटी से छोटी गतिविधियों, तकनीकी कमियों तथा कार्यप्रणालियों का सूक्ष्मतम विश्लेषण करने के साथ ही कन्स्ट्रक्शन साइट्स पर ईंट-गारा ढोने वाली श्रमिक स्त्रियों के रोजमर्रा जीवन का जीवंत चित्रण किया है।

'चेनाबेर स्रोत' में उन्होंने सोनी तथा पार्वती इत्यादि के माध्यम से श्रमिक वर्ग तथा बाई साहिबा के माध्यम से सभ्रांत और संपन्न वर्ग के स्त्री जीवन को चित्रित किया है| उपन्यास 'अहिरण' में स्त्री पात्रों नन्हीबाई, कदम बाई तथा निर्मला के माध्यम से मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग की स्त्रियों के जीवन अनुभवों तथा कठिनाइयों को लिपिबद्ध किया गया है|

उपन्यास 'चेनाबेर स्रोत' कश्मीर में चंद्रभागा नदी के ऊपर पुल निर्माण की प्रक्रिया में कन्स्ट्रक्शन वर्क साइट्स पर काम करने वाले अभियंताओं, हरिजन पुरुष तथा महिला श्रमिकों को इंदिरा गोस्वामी ने करीब से देखा था। यह अलग एक दुनिया, जो असम से बिल्कुल भिन्न थी। 'चेनाबेर स्रोत' में वर्णित सर्वहारा वर्ग का शोषण इंदिरा गोस्वामी का आँखों देखा अनुभव था। वर्कसाइट

पर रहने के दौरान इंदिरा गोस्वामी ने यह अनुभव किया कि गरीब श्रमिकों की पत्नियों का दैहिक शोषण जहाँ उच्च अधिकारियों द्वारा किया जाता है वहीं सीमा पर तैनात सैनिक भी उनकी विवशताओं का फायदा उठाते हैं। ऐसी ही एक श्रमिक विधवा से जब इंदिरा गोस्वामी का सामना होता है तो वह उसकी दुर्दशा देख कर वेदना से भर उठती हैं, उनके साथ आई पद्माबाई कहती है, "यह कंपनी की ही है। पुल बनने से पहले कुआँ धँसने में पति मर गया। तीन छोटे-छोटे बच्चे खलासी के लंगर में भीख माँगते फिरते हैं।"[70] श्रमिक विधवा का परिवार के भरण-पोषण के लिए देह व्यापार में लगने को विवश होना तथा पिता के मरने पर बच्चों का प्राथमिक शिक्षा से वंचित रह कर भीख मांगने में लग जाना वर्कसाइट्स पर सामान्य घटना थी।

उपन्यास 'मामरे धरा तारोवाल' उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले में सई नदी के ऊपर एक्वेडक्ट निर्माण के दौरान वर्क साइट पर चल रहा काम पूरा होने की कगार पर आता है तो श्रमिकों की आँखों में भय और आतंक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। इंदिरा गोस्वामी लिखती हैं, "during my time in Rae bareli the construction of the aqueduct progressed nearly to its end. The terror and anxiety of having no work to do to sustain themselves after the completion of the project overwhelmed them. No work meant no food. I saw many of them sitting on the shuttering cranes, distraught."[71]

इंदिरा गोस्वामी ने वर्ग और लिंग आधारित शोषण का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उनके उपन्यासों में ऐसे दृश्य भी उपस्थित होते हैं जब वर्ग, जाति और लिंग आधारित शोषण में अंतर करने वाली रेखा बहुत धूमिल हो जाती है। उपन्यास 'मामरे धरा तारोवाल' में आर्थिक मदद के लिए नारायणी का अधिकारी के साथ सोने पर विवश होना ऐसा ही एक दृश्य है, इस संबंध में मंजीत बरुआ लिखते हैं,

"The dilemma that the novel raises is whether Narayani's need to sleep with her superior is an example of class or gender exploitation. When she is criticized in the community, she argues that she has every right to use her body in the way she likes. But it can also be seen as one of class 'alienation' (i.e. sex as labour)"[72]

'चेनाबेर स्रोत' तथा 'मामरे धरा तारोवाल' में दो भिन्न कालखंड लिए गए हैं। इंदिरा गोस्वामी ने यह चित्रित करने का प्रयास किया है कि वर्ग से भी बड़ा शोषण सत्ता शोषण होता है। अर्पण कुमार को समालोचन के लिए दिए गए साक्षात्कार में इंदिरा गोस्वामी कहती हैं, "'चेनाबेर स्रोत' 1966-67 की कहानी है. तब कोई यूनियन नहीं थी. बड़ी-से-बड़ी दुर्घटना हो जाती और लोगों तक बात को पहुँचने नहीं दिया जाता। कोई विरोध नहीं, कोई प्रदर्शन-धरना नहीं, अधिकार-चेतना से बिल्कुल शून्य। जब मर्ज़ी जिसको निकाल दिया, भूखों मरने के लिए. यूनियनें 1970 में बनीं. पहले उसका शक्तिशाली और क्रमशः बाद में शिथिल और समझौतावादी होता रुख— दोनों मैंने देखे. 'मामरे धरा तरोवाल' को पूरा करने के लिए मैं रायबरेली के उस साइट पर छह महीने रही और सब कुछ अपनी आँखों से देखा. मैंने बेबस मज़दूरों को अपने भ्रष्ट नेताओं द्वारा दिग्भ्रमित होते देखा है जो मालिकों के आगे जूते चटकाते फिरते थे। सांगठनिक रूप से उन्हें मजबूत और ईमानदार होने की ज़रूरत है।"[73]

'नीलकंठी ब्रज', 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' तथा 'छिन्नमस्ता' में धार्मिक कुरीतियों में जकड़े तथा इनसे लगातार संघर्ष करते स्त्री पात्रों का चित्रण इंदिरा गोस्वामी की गूढ़ और बारीक स्त्री दृष्टि का परिचायक है। इंदिरा गोस्वामी के स्त्री पात्र सामाजिक और पितृसत्तात्मक हाईरारिकी के दमन का विरोध तो करते हैं परंतु उनका यह संघर्ष संवाद के उस स्तर तक नहीं पँहुच पाता जहाँ से एक बदलाव आ सके परंतु यह भी तथ्य है कि इन स्त्री पात्रों के संघर्ष के माध्यम से बदलाव की शुरुआत जरूर होती है। पापोरी गोस्वामी इंदिरा गोस्वामी की बारीक स्त्रीदृष्टि को रेखांकित करते हुए लिखती

हैं, "डॉ. गोस्वामी के लेखन का महत्वपूर्ण पक्ष है- पतित और उपेक्षित नारी। कोई पति के विश्वासघात की वजह से, कोई अवैध संतान की माँ होने की वजह से, कोई विधवा होने के कारण। लेकिन उनके नारी पात्रों की विशेषता है कि वे आवाज उठाती हैं। विद्रोह करती हैं और अपनी शक्ति का परिचय देती हैं। प्रेम और अधिकार पाने के लिए संघर्ष करती हैं। "[74]

इंदिरा गोस्वामी की दृष्टि से भक्ति और आस्था के केंद्र वृंदावन देवनगरी की वो अंधेरी कोठियाँ नहीं छिपतीं जिनके भीतर विधवा राधेश्यामियाँ मान-सम्मान रहित तथा अभावग्रस्त जीवन जीने को बाध्य हैं। वृंदावन में विधवाओं का शोषण समझना उनकी व्यापक स्त्री दृष्टि का परिचायक है। असम्मानजनक जीवन जीते हुए वैधव्य को श्राप की तरह भोगती विधवाओं के विषय में इंदिरा गोस्वामी लिखती हैं कि अपमान और घृणा के अतिरिक्त उन्हें कुछ न दे सकने वाले मुरलीधर के प्रति विधवा राधेशयमियों के अगाध प्रेम को देख कर मैं अवाक रह जाती थी, "I was indeed amazed at this longing of the widows to be with Murlidhar, that Murlidhar, who gave them nothing in life apart from dishonour and insult. I came in to intimate contact with these skeletal bodies with tattered clothes on their bodies and untidy hair manifesting, the curse of widowhood upon them."[75] वृंदावन की विधवाओं की नजरों से श्री कृष्ण के व्यक्तित्व को समझ पाना भी इंदिरा गोस्वामी की स्त्री दृष्टि की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। "युगपुरुष ऐतिहासिक कृष्ण धूलि-धूसरित हो कर इतिहास के पन्नों में खो गए हैं पर उनके पिता, प्रेमी और सखा के अभिनव रूप ने इन विधवाओं के नीरस जीवन को सरस बनाया है। "[76] धर्म के स्वरूप को वृंदावन में ढोंगी और पाखंडी तथा तथाकथित धर्म गुरुओं द्वारा किस प्रकार बिगाड़ दिया गया था, यह इंदिरा गोस्वामी पूरी तरह समझ पा रही थीं। वृंदावन में लीला बाबा से साक्षात्कार को इंदिरा गोस्वामी कुछ इस प्रकार वर्णित करती हैं, "रंग काला था, पर बाबा दिखने में जवान लगते थे। लंबा-चौड़ा पुष्ट बदन था और सिर के बाल थे काले। उनकी आँखें अधखुली थीं जैसे भाँग या किसी और चीज का नशा किया हो। "[77] इंदिरा गोस्वामी यह

देख कर अवाक रह गईं कि उनके जूठे प्रसाद को भक्तगण बड़ी श्रद्धा से खा रहे थे। विधवाओं के विषय में लीला बाबा की ओछी बात "विधवा होते ही नारी अपना सर्वस्व खो देती है। विधवा होने मात्र से नारी का जीवन मिट्टी में मिल जाता है। "[78] सुनकर उनका ऐसे धर्मगुरुओं से विश्वास पूरी तरह से टूट गया। "लीला बाबा के मंदिर में उस दिन मैंने आखिरी बार पैर रखा था, उसके बाद मैंने कभी भी उनकी तरफ मुड़कर भी नहीं देखा। "[79]

ढोंगी पुरोहितों की धूर्तता के विषय में उनकी आत्मकथा 'जिंदगी कोई सौदा नहीं' की कुछ पंक्तियाँ निम्नवत हैं- "इन ढोंगी पुरोहितों के बारे में मैंने बहुत कुछ सुन रखा था। एक बार ये लोग अखाड़े के एक बिल्कुल ही दरिद्र परिवार की दस-ग्यारह साल की दो लड़कियों को दो चार आने दे कर एक अंधेरी कोठरी में ले गए थे। ऐसा बताते हैं, वहाँ इन लोगों ने उन बच्चियों को पूर्ण नग्न करके कोई पूजा की। कभी कोई भूले से भी अगर उन बच्चियों से इस बारे में कुछ पूछ बैठता, तो बेचारी लाज के मारे हिरनी सी भाग खड़ी होतीं। मुझे ये बच्चियाँ अक्सर कुछ पैसों के लिए हाथ पसारे खड़ी मिलती थीं। "[80]

'दक्षिणी कामरूप की गाथा'(दांताल हाथिर उने खोवा हौदा) के द्वारा इंदिरा गोस्वामी ने वैष्णव सत्र के इतिहास का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इंदिरा गोस्वामी से पूर्व भी इतिहासकारों द्वारा सत्रों के इतिहास का सुव्यवस्थित दस्तावेजीकरण किया गया है यथा भूमि सुधार अधिनियम के तहत किस प्रकार सत्रों से राजाओं द्वारा उपहार स्वरूप मिली जमीन को वापस ले लिया गया, सत्रों के भीतर पूजा अर्चना इत्यादि का विवरण, समाज विज्ञानियों के बीच शोध का मुद्दा रहे हैं परंतु इंदिरा गोस्वामी स्वयं सत्राधिकार के परिवार से संबद्ध होने के बावजूद निष्पक्ष दृष्टि से सत्रों के भीतर के व्यक्ति शोषण को समझ कर लिपिबद्ध कर पाती हैं। प्रो. शिशिर कुमार दास का कहना है, "The sattra, a citadel of power, both religious and social. Never before in our literature had a religious order been presented with such vividness and skill, bringing out its stubbornness and austerity, as well as its profound authority

on the people large…and what finally emerges is not only a benign face of the sattras but their terrifying existence as well."[81]

उपन्यास का मूल नाम "दंताल हाथी उने खोवा हौदा" है| दांत वाले विशालकाय हाथी की पीठ पर रखा हौदा दामोदरिया गोसाइयों की प्रतिष्ठा का प्रतीक चिह्न है पर इस नक्काशीदार हौदे को हाथी की पीठ पर व्यवस्थित रखने के लिए हौदे  में लगी कीलों से हाथी को भीषण पीड़ा होती है| यह पीड़ा इस ओर भी इंगित करती है कि कभी- कभी झूठी प्रतिष्ठा का मोल किस कीमत पर चुकाना पड़ता है? इसी झूठी प्रतिष्ठा के प्रतीक घुन लगे हौदे को सत्राधिकार के  पुत्र इन्द्रनाथ का प्रिय हाथी जगन्नाथ उन्मत्त होकर चकनाचूर कर देता है और मारा जाता है| उसकी मुक्ति मृत्यु से ही संभव हो पाती है| कमोबेश यही स्थिति गिरिबाला की है जिसकी मृत्यु ही उसकी मुक्ति को सुनिश्चित करती है| उपन्यास के माध्यम से इंदिरा गोस्वामी समाज को खोखला कर रही धार्मिक मान्यताओं, पाखंडपूर्ण कर्मकांडों पर प्रश्न उठाती हैं। धार्मिक कोडों के अंतर्गत विधवा स्त्री की यौनिकता पर लगे प्रतिबंधों का चित्रण करते हुए 'नीलकंठी ब्रज' की सौदामिनी तथा शशिप्रभा, 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' की गिरिबाला तथा सारू गोसाइन के माध्यम से स्त्री यौनिकता को सामाजिक यथार्थ के रूप में चित्रित करना इंदिरा गोस्वामी की स्त्री दृष्टि की विशेषता है। इस संदर्भ में तिलोत्तमा मिश्रा लिखती हैं, "Mamoni Raisom Goswami is one of the rare Indian women writers who dare to portray a women's sexual needs as a natural right."[82] धार्मिक कुरीतियों के अंतर्गत स्त्री के सहज मासिक धर्म को पाप और लज्जा का विषय समझना, इसका भी विश्लेषणपूर्ण वर्णन उनके उपन्यासों 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' और 'छिन्नमस्ता' में मिलता है। दोनों ही उपन्यासों में किशोरियों इलिमन तथा विधिबाला का विवाह पूर्व मासिक धर्म के चक्र में आना परिवार के लिए लज्जा का विषय है जिसके कारण उनका विवाह अधेड़ उम्र के अयोग्य पुरुषों से तय कर दिया जाता है। इलिमन को पालने-पोसने वाली वृद्धा इंद्रनाथ से कहती है, "सुनो, गोसाईं, कुछ ऐसी दुष्ट औरतें हैं जो रात के समय चुपके-चुपके लोगों के घरों के पिछवाड़े

में जाती हैं। उनका काम केवल यही देखना होता है कि घर की लड़की माहवारी से तो नहीं है। मुझे डर है कि इस लड़की के साथ भी कुछ ऐसा ही घटा है। मैं इसे यहाँ ले आई हूँ क्योंकि मैं उनसे डरती हूँ। वे चारों ओर इस खबर को फैला देंगी और इस लड़की की शादी नहीं हो पाएगी। फिर वे पुराने ब्राह्मण इसे और इसके बाप को समाज से बाहर कर देंगे।"[83]

उपरोक्त तथ्यों के माध्यम से समझा जा सकता है कि इंदिरा गोस्वामी ने असम समाज के पाखंडी कर्मकांडों तथा कुसंस्कारों को स्त्री दृष्टि से देखने और समझने के साथ ही अपना विरोध जताया है।

'तेज आरु धूलि धूसरित पृष्ठो' तथा तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल' उपन्यासों की नायिकाएं इंदिरा गोस्वामी के पहले के उपन्यासों की नायिकाओं की अपेक्षा अधिक साहसी और क्रांतिकारी हैं जिससे इंदिरा गोस्वामी की स्त्री दृष्टि के विस्तार का परिचय मिलता है। 'तेज आरू धूलि धूसरित पृष्ठो' में 1984 के सिख दंगों की विभीषिका को दंगों के समय एक महिला नागरिक किस तरह से देख रही है, वह प्रत्यक्ष रूप से दंगों से प्रभावित नहीं पर उसके परिचित और करीबी सिख नागरिकों की दुर्दशा उसे इस तरह आक्रांत करती है कि दंगों के दौरान तो वह आस पास के सिख समुदाय की यथासंभव सहायता करती है परंतु दंगों के तुरंत बाद दिल्ली छोड़ देती है। वह अध्यापिका होने के साथ लेखिका भी है और दिल्ली के इतिहास को पुस्तक रूप में लिपिबद्ध करने की उसकी इच्छा अधूरी रह जाती है। अपनी डायरी में वह लिखती है, "I leave for Guwahati 20 November, 1984, my desire to write the book on Delhi, painting in broad swaths of colour the days and lives of the Moghuls and the British Raj, remaining unfulfilled…"[84]

दंगों की भयावहता और अल्पसंख्यकों का इस तरह से नरसंहार, सभी अल्पसंख्यक समुदायों और हाशिए के वर्गों के सुरक्षित भविष्य पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है।

इंदिरा गोस्वामी दिल्ली की रेड लाइट क्षेत्र की पृष्ठभूमि पर एक उपन्यास लिखना चाहती थीं। इसका जिक्र उन्होंने अपने उपन्यास 'तेज आरु धूलि धूसरित पृष्ठो' में भी किया है। वेश्याओं के जीवन को नजदीक से देखने और उनके दर्द को समझने के उद्देश्य से तथ्य संकलन के लिए वह दिल्ली की जी बी रोड स्थित रेड लाइट क्षेत्र में जाती हैं तो इंदिरा गोस्वामी की स्त्री दृष्टि से कुछ भी छिपा नहीं रहता, बालों में लगे नाइलान के रिबन से लेकर गहरा और भड़कीला मेकअप, जो उन्हें व्यक्ति से वस्तु बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इंदिरा गोस्वामी लिखती हैं, "Wide nylon ribbons on their heads, with a thick layer of cheap lipstick on each. A large crowd of young boys were staring at them open mouthed… such a large number of girls could actually be cooped in such a tiny room was beyond may imagination. The sharp stink of the cheap make-up they were wearing hit my nostrils."[85]

'थेंगफाखरीर तहसीलदारेर ताँबार तारोवाल' में इंदिरा गोस्वामी ने स्त्री प्रश्नों के संदर्भ में बोडो समाज के रहन सहन, रीति रिवाजों का विश्लेषण किया है, उपन्यास से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

थेंगफाखरी को ब्रिटिश सरकार द्वारा इजारदार के पद पर नियुक्त कर दिया जाता है तो एक वृद्ध थेंगफाखरी के सर पर हाथ रखते हुए कहता है ऐसे समय में जब जबरदस्ती कम उम्र की विधवाओं को उनके पतियों के साथ सती कर दिया जाता है, उन्हें नियम-कानूनों में बांध दिया जाता है, ऐसे समय में, हमारी थेंगफाखरी लगान वसूल रही होगी। हमें उस पर गर्व करना चाहिए, "Our Thengphakhri! When young widows are burnt alive with their husbands by force and when they hav to follow rules and regulations in all they do, in such times, Our Thengphakhri will be collecting taxes! Will be working and earning for her family! Bah! This is amazing, we should be proud of her!"[86]

उत्तरप्रदेश के फरुखाबाद से कामाख्या दर्शन हेतु आया एक सिपाही राम बाबू, थेंगफाखरी की प्रशंसा में कहता है इसके ऊपर तो माँ का आशीर्वाद है। यहाँ पर महिलाओं का सम्मान किया जाता है और हमें देखो, हमारे घर की औरतें परदों में छिपी रहती हैं। न ऐसे अपने बाल खोल सकती हैं और न ही ऐसे टोपी पहन सकती हैं और तो और अगर पति मर जाए तो वह भी श्मशान में जिंदा जला दी जाती हैं। आप लोगों के यहाँ भी ऐसी कुरीतियाँ हैं क्या? गाँव वाले उत्तर देते हैं कि ऐसी प्रथाएं हमारे समाज में नहीं मानी जातीं, परंतु शाही परिवारों में ऐसा होता है। राजा मुकुंद देव कि मृत्यु के बाद उनकी पाँच रानियाँ सती हो गई थीं। "Ram Babu looked at her and said aloud, She has the Mother's blessings! Here women are respected and look at us: our women are hidden behind the purdah. They can't even leave their hair open like this, they can't wear hat like this and when their husbands die—they are also burnt alive in the cremation ground. Did you know that? Do you have such practices here too?

Someone from the crowd from the farmers said, "But such practices are present here only among the royal families. Along with Raja Mukundadev around five of his queens burnt alive."[87]

थेंगफाखरी के साहस के साथ उसके सौन्दर्य का अप्रतिम वर्णन भी उपन्यास के स्त्री पाठ की विशेषता है। उपन्यास से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। थेंगफाखरी के केश अन्य बोडो महिलाओं की तुलना में कुछ ज्यादा ही लंबे थे, जब भी वह सूरज की रोशनी में खड़ी होती, उसके केश सुनहले धागों की तरह चमकते थे। "Thengphakhri had much longer hair than other Bodo women and when she stood in the sun, it glittered like gold."[88] इंदिरा गोस्वामी पारंपरिक पहनावे के साथ ही तहसीलदार के रूप में बूटस और हैट पहने हुए थेंगफाखरी की छवि को गढ़ती हैं तथा माँ दुर्गा की तलवार को उसकी शक्ति का स्रोत चित्रित करते हुए वह थेंगफाखरी

की छवि को स्थानीय होने के साथ ही राष्ट्रीय नायिका के रूप में भी चित्रित करती हैं। इस संबंध में पूरबी गोस्वामी लिखती हैं, "The image of Thengphakhri riding a horse with a hat on her head with breeches over her 'dokhna' appears totally different. She looks like a national and a local figure at the same time, a wonderful cross of the two…Apart from this, the sword Thengphakhri uses belongs to a ruined temple of Devi Durga and it can be called her source of power that combines the Hindu religious beliefs with the prowess of a Bodo woman."[89]

थेंगफाखरी के शौर्य और पराक्रम को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर इंदिरा गोस्वामी ने बोडो जनजाति के इतिहास का पुनर्पाठ किया है, जो उनकी स्त्री दृष्टि की महत्वपूर्ण विशेषता है। इस संबंध में अरुणि कश्यप लिखते हैं कि एक विस्मृत बोडो नायिका के चरित्र पर भारत की अग्रणीय लेखिका द्वारा उपन्यास लिखना बहुत महत्वपूर्ण है: वास्तव में इंदिरा गोस्वामी बोडो सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान और भारतीय स्वाधीनता संग्राम में बोडो जनजाति के योगदान को भारतीय साहित्यिक और सांस्कृतिक परिधि के केंद्र में लाना चाहती थीं| "The act of writing novel on a forgotten Bodo heroine by one of India's most respected writer has deep significance: Goswami was actually transplanting Bodo life and culture, their contribution to india's Freedom Struggle into the centre of India's literary and cultural imaginitaion."[90]

संवेदनशील पुरुषपात्रों की रचना करना इंदिरा गोस्वामी की स्त्री दृष्टि की महत्वपूर्ण विशेषता है। इस अर्थ में इंदिरा गोस्वामी स्त्रीवादी होने के साथ ही मानवतावादी भी हैं। सबरीन अहमद लिखती हैं, "A stringent critique of the institutional structures that bind both men and women, Goswami's writing is feminist with strong humanist appeal. She

represents her characters, both male and female as prey to the oppressive structures of sanctification."[91]

इंदिरा गोस्वामी ने अपने उपन्यासों के पुरुष पात्रों के माध्यम से 'वैकल्पिक पुरुषत्व' को भी चित्रित किया है। प्रीतिनिचा बर्मन और द्विजेन शर्मा अपने लेख 'Alternative Masculinities in Indira Goswamis's Fiction' में लिखते हैं की स्त्रीत्व और पुरुषत्व एक दूसरे के लिए प्रतिद्वंद्वी नहीं बल्कि एक गोलाप्रकार के दो सिरों की तरह हैं। "Consedering masculinity from a feminist frame, it seems to act like a threat/challenge to the feminist ideals, though these twin concepts or forms of gender are in praxis, the two legs of a geometrical compass."[92]

उपन्यास 'दाँताल हाथिर उने खोवा हौदा' में इंदिरा गोस्वामी ने सत्राधिकार के पुत्र इंद्रनाथ के रूप में ऐसे पुरुष पात्र को चित्रित किया है जो पुरुषत्व के गढ़े-गढ़ाए खाँचों में फिट नहीं बैठता। अपने सत्राधिकार पिता के पदचिह्नों पर न चलते हुए वह सत्र की जमीन, उसे जोतने वाले किसानों को दान करने का निर्णय लेता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री अशिक्षा, स्त्री पराधीनता, लैंगिक असमानता तथा जातिगत भेदभाव इत्यादि सामाजिक बुराइयों के संदर्भ में यथास्थितिवाद का पक्ष लिया जाता है। सामाजिक बुराइयों का समर्थन करना हेजेमोनिक पुरुषत्व के अंतर्गत आता है। इंद्रनाथ द्वारा गिरिबाला को पढ़ाई के लिए प्रेरित करना, हेजेमोनिक पुरुषत्व का विकल्प प्रस्तुत करता है। प्रीतिनिचा बर्मन और द्विजेन शर्मा अपने लेख में आगे लिखते हैं,- "In dantal Hatir Une Khowa Hawdah' Goswami has sensitively dealt with social evils through the protagonist Indrnath the son of Sattradhikar Goswami consciously presents him as a socially viable masculine figure. As he is presented as educated, intelligent, decisive, patient sympathetic with leadership qualities, he is never shown to espouse hegemonic masculinity."[93]

उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में रत्नधर यह समझ सकता है कि विधिबाला का विवाह उसकी मर्जी के बिना किसी अधेड़ से कराना वैसा ही है जैसे किसी जानवर की बलि दे दी जाती है। "अचानक रत्नधर के हृदय में एक बात प्रतिध्वनित हुई- बलि देने के लिए लाए गए पशु और औरतों के बीच फर्क ही क्या था? विधिबाला, तुम वधस्थल में मत जाओ। कह दो कि तुम्हारी यह शादी नहीं हो सकती।"[94] रत्नधर बलि के लिए लाए गए भैंसे को बचाने के लिए विधिबाला की सहायता करता है। परिणामस्वरूप उसे विधिबाला के पिता सिंहदत्त के कोप को झेलना पड़ता है।

'अहिरण' में मैनेजर हरसुल और धोबी अजीज मियाँ संवेदनशील पुरुषपात्र हैं। अपने घर पर काम करने वाली नन्हीबाई और कदमबाई के प्रति हरसुल सहानुभूति रखता है। वर्कसाइट के इंजीनियर जीवरांम दास, टाइमकीपर दुर्योधन ठाकुर तथा अन्य द्वारा नन्हीबाई के दैहिक शोषण पर वह वितृष्णा से भर उठता है। साइट पर काम में लगा ड्राइवर गौरीशंकर, कदमबाई को गर्भवती कर भाग जाता है। मैनेजर हरसुल कदमबाई की यथासंभव सहायता करता है।

इस प्रकार प्रथम उपन्यास 'चेनाबेर स्रोत' से लेकर अंतिम उपन्यास 'थेंगफाखरी तहसीलदाररेर ताँबार तारोवाल' के माध्यम से इंदिरा गोस्वामी की स्त्री दृष्टि के क्रमिक विकास को समझा जा सकता है।

**निष्कर्ष:**

कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी की स्त्री दृष्टि में साम्य अधिक है, संदर्भ अलग हैं।

कृष्णा सोबती की स्त्री दृष्टि जहां संयुक्त परिवारों की सत्ता तथा उसकी जटिल संरचना पर प्रश्नचिह्न खड़ा करती है वहीं इंदिरा गोस्वामी की स्त्री दृष्टि वैष्णव सत्रों में धर्म की निरंकुशता पर। 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', दिलोंदानिश' के माध्यम से कृष्णा सोबती ने परिवार के भीतर स्त्रियों के स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने में आने वाली चुनौतियों को सामने रखा तो इंदिरा गोस्वामी ने

उपन्यासों 'नीलकंठी ब्रज', 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' तथा 'छिन्नमस्ता' के माध्यम से धर्म को आधार बना कर स्त्री समाज को शोषित करने वाले कारकों पर प्रकाश डाला है।

कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी ने स्त्री की यौन शुचिता के संबंध में पितृसत्तात्मक मान्यताओं पर प्रहार किया है। इस ढाँचे से बाहर की कोई भी स्त्री-इच्छा अनैतिक मानी जाती है। स्त्री के संदर्भ में यौन इच्छाओं की अभिव्यक्ति अश्लीलता और चरित्रहीनता की श्रेणी में आती है। स्त्रियों द्वारा स्वाभाविक शारीरिक सुख की चाह रखना अश्लील या बोल्ड करार दिया जाता है। दोनों रचनाकारों ने स्त्रियों की इस अभिव्यक्ति को सामाजिक यथार्थ मानते स्त्री पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है। कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी की स्त्री दृष्टि ऐसे स्त्री पात्रों का सृजन करती है जो कथा साहित्य के पूर्व स्थापित प्रतिमानों को तोड़ती हैं। ये स्त्री पात्र अपनी आकांक्षाओं और मनोवेगों को दबाने के बजाय उन्हें खुले मन से अभिव्यक्त करने में विश्वास रखते हैं। कृष्णा सोबती ने मित्रो, छुन्ना बीबी, महकबानो तथा इंदिरा गोस्वामी ने सौदामिनी, गिरिबाला, निर्मला के माध्यम से स्त्री की अभिव्यक्तियों को सामाजिक यथार्थ की भाँति चित्रित किया है।

कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी दोनों की स्त्री दृष्टि में तीन सोपान दिखाई पड़ते हैं जिनसे स्त्री सशक्तिकरण का पथ क्रमशः विस्तृत होता प्रतीत होता है। कृष्णा सोबती के स्त्री पात्र संघर्षों में लगातार आगे बढ़ते रहते हैं। मित्रो, रतिका, छुन्ना बीबी, महकबानो ऐसे ही स्त्री पात्र हैं परंतु इंदिरा गोस्वामी के संघर्षशील पात्र अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद बदलाव नहीं ला पाते। सौदामिनी की आत्महत्या, गिरिबाला का आत्मदाह, डोरोथी की हत्या तथा निर्मला द्वारा गर्भपात कराना इसी का द्योतक है।

इंदिरा गोस्वामी ने अपने उपन्यासों 'दाँताल हाथिर उने खोवा हौदा' तथा छिन्नमस्ता के माध्यम से पूर्वोत्तर के समाज में स्त्रियों के मासिक धर्म को एक टैबू की तरह चित्रित किया है। पूर्वोत्तर की पृष्ठभूमि से अलग उनके उपन्यासों में मात्र 'नीलकंठी ब्रज' ही ऐसा है जिसमें स्त्रियों के मासिक धर्म

को छुआ छूत के संदर्भ में रखा है। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि मासिक धर्म के साथ जुड़ी समस्याओं को मुख्यतः उच्च जाति और वर्ग की महिलाओं के संदर्भ में चित्रित किया गया है। यथा 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' में दुर्गा, गिरिबाला तथा इलिमन के माध्यम से, 'छिन्नमस्ता' में विधिबाला और नीलकंठी ब्रज में युवा विधवाओं के माध्यम से। श्रमिक जीवन पर आधारित उनके तीनों उपन्यासों में दलित वर्ग की स्त्रियों के संदर्भ में कहीं भी वह मासिक धर्म से जुड़ी समस्याओं का प्रश्न नहीं उठाती हैं। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ उत्पादक की श्रेणी में आती हैं प्रायः उनके ऊपर घर संभालने के साथ ही घर चलाने की भी जिम्मेदारी होती है। इस वर्ग की स्त्रियों में मासिक धर्म एक टैबू नहीं होता क्योंकि व्यावहारिक रूप से यह संभव नहीं है कि घर को आर्थिक रूप से संभालने वाली स्त्री को छुआ छूत के कारण अन्य कार्यों से दूर रखा जाए।

कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास 'चन्ना' में युवा होती चन्ना के माध्यम से वह मासिक धर्म के दौरान होने वाले मानसिक बदलावों की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं परंतु वे धार्मिक कोडों के अंतर्गत इसे एक टैबू के रूप में चित्रित नहीं करतीं। दोनों साहित्यकारों के परिवेश में जो भिन्नता है वह इसका एक मुख्य कारण है। पंजाब के समाज में मासिक धर्म को एक टैबू नहीं माना जाता है। दोनों साहित्यकारों में यह अंतर संस्कृति की विविधता की वजह से भी है। पंजाब की धार्मिक तथा साहित्यिक परंपरा पर गुरुबानी तथा सूफी काव्य परंपरा का प्रभाव है जबकि पूर्वोत्तर के साहित्य में शक्तिपीठ कामख्या से जुड़ी किवदंतियों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। शक्तिपीठों में से एक कामाख्या में सती का योनि भाग गिरा था। पूर्वोत्तर के समाज में आषाढ़ के चार दिनों में पृथ्वी को भी रजस्वला माना जाता है। इन तथ्यों से यह भी स्पष्ट होता है कि इस समाज में मासिक धर्म का होना गोपिनीय नहीं बल्कि कर्मकांडों से जुड़ी प्रथा के रूप में देखा जाता है। गुरुबानी में गुरु नानक अपने वचनों के माध्यम से स्त्री और पुरुष की समानता पर बल देते हैं। शुद्धि को लेकर गुरुबानी में जो वचन हैं उनके आधार पर यह समझा जा सकता है कि गुरुनानक मन की शुद्धि को ही सर्वोपरि मानते हैं।

पात्रों की जातीय पहचान के संदर्भ में भी दोनों साहित्यकारों में अंतर दिखाई पड़ता है। कृष्णा सोबती ने मात्र 'समय सरगम' और 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' में भारत की जातीय व्यवस्था का उल्लेख किया है। इंदिरा गोस्वामी के प्रायः सभी उपन्यासों में पात्र अपनी जातीय पहचान के साथ ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होते हैं। यह अंतर भी दोनों साहित्यकारों की सांस्कृतिक भिन्नता से जुड़ा हुआ है। पश्चिमोत्तर के समाज और साहित्य पर गुरुबानी और सूफी काव्य का प्रभाव है जो हिंदू मुस्लिम समन्वय का द्योतक है। वैष्णव सत्रों में जातिवाद की प्रधानता है अतः धार्मिक कुरीतियों की पृष्ठभूमि पर लिखे गए उपन्यासों में पात्र अपनी जातीय पहचान के साथ आते हैं।

दोनों साहित्यकारों के उपन्यासों के विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है कि पंजाब प्रांत स्त्रियों की स्वतंत्रता के संदर्भ में पूर्वोत्तर से ज्यादा खुला हुआ है। इससे इस धारणा का भी खंडन होता है कि पूर्वोत्तर का सम्पूर्ण समाज मातृसत्तात्मक है और वहाँ स्त्रियाँ ही पारिवारिक व्यवस्था का नेतृत्व करती हैं। असम की कुछ जन जातियाँ मातृवंशीय हैं और इंदिरा गोस्वामी ने अपने अंतिम उपन्यास में बोडो जनजाति की थेंगफाखरी के अपेक्षाकृत स्वतंत्र जीवन को चित्रित करते हुए इस तथ्य का ध्यान भी रखा है। उपन्यास में थेंगफाखरी के दादा त्रिभुवन बहादुर कहते हैं कि बोडो समाज में सती प्रथा नहीं होती है। यह ऐतिहासिक तथ्य है। "In the widow remarriage , the widower must cut off his all patrilineal relationship and induct to himself to the 'ari' (clan) of the widow." Rev. Sidney Endle अपनी पुस्तक 'The Kacharis' में लिखते हैं यद्यपि कचारी महिलाओं को खासी जनजाति की महिलाओं से अपेक्षाकृत कम स्वतंत्र है फिर भी उनका जीवन सम्मानजनक है। "Among the Kacháris women do not perhaps occupy quite the same influential position as seems to be enjoyed by their sisters in the Khasi Hills, where something like a matriarchate apparently holds the field of social and domestic life. Still, with

this interesting race the position of the wife and mother is far from being a degraded one…Kachari women both in early life, and as matrons, enjoys a large measure of freedom, a freedom which is very rarely abused for evil purposes."[95]

कृष्णा सोबती स्त्रीदृष्टि के संदर्भ में अर्धनारीश्वर की अवधारणा पर बल देती हैं उपन्यास 'यारों का यार' तथा 'हम हशमत' के माध्यम से उन्होंने इस तथ्य पर जोर दिया है। इंदिरा गोस्वामी लेखक की स्वतंत्र दृष्टि को महत्व देती हैं जिसके आधार पर वह वर्ग, जाति तथा लिंग आधारित शोषण को समझ सके।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है स्त्री दृष्टि के संदर्भ में कृष्णा सोबती और इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन दोनों साहित्यकारों के साहित्यिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है। दोनों साहित्यकारों ने समाज के विभिन्न वर्ग की स्त्रियों का चित्रण किया है। जहां कृष्णा सोबती ने प्रायः मध्य वर्ग की स्त्रियों के जीवन को चित्रित किया है वहीं इंदिरा गोस्वामी ने अपेक्षाकृत व्यापक स्तर पर सर्वहारा वर्ग की स्त्रियों के जीवन की कठनाइयों को समझा और चित्रित किया है। कृष्णा सोबती तथा इंदिरा गोस्वामी की स्त्री दृष्टि की विशेषता है कि उन्होंने 'सूरजमुखी अंधेरे के' के दिवाकर, 'समय सरगम' के ईशान, 'दक्षिणी कामरूप की गाथा' के इंद्रनाथ तथा 'अहिरण' के 'मैनेजर हरसुल' रूप में ऐसे पुरुष पात्रों का सृजन किया है जो भावुक और स्त्री-संवेदनाओं को समझने में सक्षम हैं।

## संदर्भ सूची-

[1] हरिनारायण (संपादक), कथादेश, वर्ष-37, अंक-1, मार्च 2019, पृष्ठ- 62,

[2] चक्रवर्ती, उमा, आर्य, साधना (2021), स्त्री अध्ययन: एक परिचय, अनुवाद संपादक- विजय झा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 36

[3] मेनन, निवेदिता (2021), नारीवादी निगाह से, अनुवाद: नरेश गोस्वामी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 7

[4] चक्रवर्ती, उमा, आर्य, साधना (2021), स्त्री अध्ययन: एक परिचय, अनुवाद संपादक- विजय झा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 21

[5] वही, पृष्ठ- 22

[6] मेनन, निवेदिता (2021), नारीवादी निगाह से, अनुवाद: नरेश गोस्वामी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 154

[7] वही, पृष्ठ- 11

[8] वही, पृष्ठ- 8

[9] चक्रवर्ती, उमा, आर्य, साधना (2021), स्त्री अध्ययन: एक परिचय, अनुवाद संपादक- विजय झा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 20

[10] वही, पृष्ठ- 25

[11] वही

[12] वही, पृष्ठ- 23

[13] वही, पृष्ठ- 25

[14] इगलटन, मैंरी (संपा.) (1986), फेमिनिस्ट लिटरेरी थ्योरी, ब्लैकवेल, यूनाइटेड किंगडम, पृष्ठ- 34

[15] वही, पृष्ठ- 35

[16] वही

[17] कालिया, ममता (संपा.) (2020), महिला लेखन के सौ वर्ष, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, भूमिका

[18] वही, पृष्ठ- 35

[19] अग्रवाल, रोहिणी, 'साहित्य की स्त्री दृष्टि', https://hindisamay.com/content/9890/1/रोहिणी-अग्रवाल-विमर्श-साहित्य-की-स्त्री-दृष्टि.cspx

[20] वही

[21] चक्रवर्ती, उमा, आर्य, साधना (2021), स्त्री अध्ययन: एक परिचय, अनुवाद संपादक- विजय झा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 163

[22] वही, पृष्ठ- 166

[23] धर्मवीर, (डॉ.) (संपा.) (2006), सीमंतनी उपदेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 6

[24] रमाबाई (पं.) (2010), हिंदू स्त्री का जीवन, अनुवाद: शंभू जोशी, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ- 64

[25] सुजाता (2021), आलोचना का स्त्री पक्ष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 147

[26] चतुर्वेदी, जगदीश्वर (2018), स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, पृष्ठ- 27

[27] वही, पृष्ठ- 31

[28] वही, पृष्ठ- 31

[29] सुजाता (2021), आलोचना का स्त्री पक्ष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ -32

[30] वही, पृष्ठ- 34

[31] अग्रवाल, रोहिणी, 'साहित्य की स्त्री दृष्टि',
https://hindisamay.com/content/9890/1/रोहिणी-अग्रवाल-विमर्श-साहित्य-की-स्त्री-दृष्टि.cspx

[32] चतुर्वेदी, जगदीश्वर (2018), स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, पृष्ठ- 33

[33] वही, पृष्ठ- 154

[34] वही, पृष्ठ- 148

[35] देवी, शिवरानी (2020), प्रेमचंद घर में, नयी किताब प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 23

[36] चतुर्वेदी, जगदीश्वर (2018), स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, पृष्ठ- 147

[37] वर्मा, महादेवी (2017), शृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, इलाहाबाद, पृष्ठ- 53

[38] वही, पृष्ठ- 53

[39] सुजाता (2021), आलोचना का स्त्री पक्ष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 49

[40] खेतान, प्रभा (2014), उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 160

[41] चतुर्वेदी, जगदीश्वर (2018), स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, पृष्ठ- 190

[42] वही, पृष्ठ- 192

[43] वही, पृष्ठ- 192

[44] सोबती, कृष्णा (2018), लेखक का जनतंत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 91

[45] वही, पृष्ठ- 198

[46] वही, पृष्ठ- 22

[47] सोबती, कृष्णा (2023), रचना का गर्भगृह, संकलन एवं संपादन: आर. चेतनक्रांति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 123

[48] महादेवी वर्मा की कहानी 'दो फूल'

https://www.femina.in/hindi/sahitya/kahani/do-phool-by-mahadevi-verma-5523-4.html

[49] सिंह, कुमार, राकेश (संपादक), सबद निरंतर, वर्ष-1, अंक-1, (जनवरी-मार्च 2021), पृष्ठ- 16

[50] वही, पृष्ठ- 17

[51] अग्रवाल, रोहिणी (2000), एक नजर कृष्णा सोबती पर, अखिल भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 32

[52] वही, पृष्ठ- 92

[53] सोबती, कृष्णा (2016), मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 36

[54] वही, पृष्ठ-64

[55] वही, पृष्ठ- 98

[56] अग्रवाल, रोहिणी (2000), एक नजर कृष्णा सोबती पर, अखिल भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-113

[57] सोबती, कृष्णा (2018), सूरजमुखी अँधेरे के, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-142

[58] सिंह, कुमार, राकेश (संपादक), सबद निरंतर, वर्ष-1, अंक-1, (जनवरी-मार्च 2021), पृष्ठ- 188

[59] सोबती, कृष्णा (2008), समय सरगम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 130

[60] सिंह, कुमार, राकेश (संपादक), सबद निरंतर, वर्ष-1, अंक-1, (जनवरी-मार्च 2021), पृष्ठ- 147

[61] वही, पृष्ठ- 233

[62] वही, पृष्ठ- 20

[63] यादव, राजेन्द्र (2021), आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 132

[64] सोबती, कृष्णा (2019), हम हशमत-4, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 87

[65] अग्रवाल, रोहिणी (2000), एक नजर कृष्णा सोबती पर, अखिल भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 34

[66] सोबती, कृष्णा (2008), समय सरगम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 29

[67] वही, पृष्ठ- 29

[68] अग्रवाल, रोहिणी (2000), एक नजर कृष्णा सोबती पर, अखिल भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 34

[69] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क , पृष्ठ-212

[70] गोस्वामी, इंदिरा (1999), जिंदगी कोई सौदा नहीं, हिंदी अनुवाद: नीता बनर्जी, हिंद पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ- 47

[71] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क , पृष्ठ- 61

[72] वही, पृष्ठ- 6

[73] समालोचन पर अर्पण कुमार का इंदिरा गोस्वामी से साक्षात्कार, https://samalochan.com/इंदिरा-गोस्वामी-अर्पण-कु/

[74] पापोरी गोस्वामी का आलेख, https://navbharattimes.indiatimes.com/opinion/articleshow/11109418.cms

[75] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क , पृष्ठ-13

[76] गोस्वामी, इंदिरा (1999), जिंदगी कोई सौदा नहीं, हिंदी अनुवाद: नीता बनर्जी, हिंद पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ-109

[77] वही, पृष्ठ-125

[78] वही, पृष्ठ-127

[79] वही, पृष्ठ-128

[80] वही, पृष्ठ-127

[81] सतारावाला, कैकोस, बुरजोर (संकलन) (2002), द  सर्च फॉर द सी: द फिक्शनल वर्ल्ड ऑफ इंदिरा गोस्वामी, बी. आर. प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 10

[82] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क , पृष्ठ-214

[83] गोस्वामी, इंदिरा (1997), दक्षिणी कामरूप की गाथा (हिंदी अनुवाद- श्रवण कुमार), साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ- 43

[84] गोस्वामी, इंदिरा (2002), पेजेज स्टेंड विद ब्लड, अंग्रेजी अनुवाद: प्रदीप आचार्य, कथा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 8

[85] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क , पृष्ठ- 69

[86] गोस्वामी इंदिरा (2013), द ब्रान्ज़ सोर्ड ऑफ थेंगफाखरी तहसीलदार, अंग्रेजी अनुवाद: अरुणि कश्यप, जुबान प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 18

[87] वही, पृष्ठ- 27

[88] वही, पृष्ठ- 2

[89] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क , पृष्ठ- 287

[90] गोस्वामी इंदिरा (2013), द ब्रान्ज़ सोर्ड ऑफ थेंगफाखरी तहसीलदार, अंग्रेजी अनुवाद: अरुणि कश्यप, जुबान प्रकाशन, नई दिल्ली, भूमिका

[91] पाठक, नम्रता, शर्मा, दिब्यज्योति (संपा.) (2022), इंदिरा गोस्वामी: मार्जिन्स एण्ड बिऑन्ड, रुतलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क , पृष्ठ- 214

[92] वही, पृष्ठ- 161

[93] वही, पृष्ठ- 169

[94] गोस्वामी, इंदिरा (2013), छिन्नमस्ता (हिंदी अनुवाद- पापोरी गोस्वामी), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ- 106

[95] एलडेन, रेव. सिडने (1911), द कचारीज, मैकमिलन प्रकाशन, लंदन, पृष्ठ- 29, ई-बुक